महादेवी वर्मा
और
पथ के साथी



कु० कमलेश अरोड़ा
एम० ए०



कला—मन्दिर
नई सड़क, दिल्ली

प्रकाशक:—
सद्साहित्य
शिकोहाबाद।

प्रथम संस्करण : १९६६
मूल्य : ३-००

मुद्रक:—
मेला प्रेस
शिकोहाबाद।

शुभ-कामना

मैं कुमारी कमलेश अरोरा को उनके इस पहले प्रयास पर शुभ-कामनायें देती हूं । महादेवी के संस्मरण 'पथ के साथी' का उन्होंने विविध दृष्टियों से अध्ययन किया है और महादेवी जी की ऊंची कल्पनाओं और प्रौढ़ परिपक्व शैली को विद्यार्थियों के समझाने योग्य सरल बना दिया है । मैं उम्मीद करती हूं कि भविष्य में वे इससे बहुत अधिक गम्भीर कार्य हाथ में लेंगी और उसे सफलता पूर्वक पूर्ण कर सकेंगी ।

शुभ कामनाओं सहित

सावित्री सिन्हा



अपनी बात



'पथ के साथी' का आलोचनात्मक अध्ययन प्रकाशित कराते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। शायद इसलिए कि अपनी प्रिय कवियत्री के साहित्य के कुछ अंश को समझने का मैंने प्रयास किया है। आरम्भ से ही महादेवी के काव्य एवं गद्य में मुझे विशेष रुचि रही है। समय-समय पर इनकी कवितायें रेखाचित्र, संस्मरण तथा निबन्ध आदि पढ़ने का अवसर मिलता रहा। लेकिन मुझे अनुभव हुआ कि गहन अध्ययन के बिना मेरी यह रुचि अधूरी है। अतः इस ओर भी मैंने ध्यान दिया। परिणामतः ! यह मेरी प्रथम तुच्छ भेंट प्रस्तुत है।

इस संग्रह में महादेवी जी के अपने पथ के छः साथियों के रेखाचित्र संकलित हैं। आरम्भ में कवीन्द्र रवीन्द्र के जीवन से सम्बन्धित रेखाचित्र को "प्रणाम" शीर्षक से प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक बात की निजी विशेषताओं को लेखिका ने एक अडग पारखी की भाँति ढूँढ़ निकाला है। ये रेखाचित्र यथार्थ चित्रण एवं प्रभाव की दृष्टि से हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ एवं सफल रेखाचित्र होने की पूरी क्षमता रखते हैं।

इस पुस्तक में रेखाचित्र के स्वरूप, विकास आदि का विश्लेषण करते हुए महादेवी का सफल रेखाचित्र के रूप में मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया है। यह मेरा प्रथम प्रयास है, इसमें मुझे कितनी सफलता मिली है यह तो पाठकगण ही पढ़ने के उपरान्त बतायेंगे। लेकिन यह उनको मानसिक एवं हार्दिक तृप्ति प्रदान करे एवं उनके लिए लाभप्रद सिद्ध हो, मेरी तो यही इच्छा सदैव रहेगी।



दो शब्द

हमने इस पुस्तक में रेखाचित्र के स्वरूप, विकास, इतिहास आदि का विश्लेषण करते हुए महादेवी वर्मा का सफल रेखा-चित्र लेखिका के रूप में मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया है। साथ ही प्रत्येक रेखाचित्र को एक शीर्षक प्रदान कर उसकी संक्षिप्त रूपरेखा, विश्लेषण, कठिन स्थलों एवं शब्दों की व्याख्या करते हुए अन्त में उस रेखाचित्र से सम्बन्धित सम्भावित प्रश्नों की भी सूची दे दी है।

आशा है अपने इस रूप में यह पुस्तक विद्यार्थियों के लिए लाभप्रद बन सकेगी।

—प्रकाशक।

१५-९-१९६६



क्या ? और कहाँ ?



रेखाचित्र का स्वरूप

रेखाचित्र हिन्दी गद्य साहित्य की सर्वथा नवीन विधा है जिसमें किसी देखे सुने अनुभव के आधार पर वास्तविक व्यक्ति की चारित्रिक विशेषताओं का मर्मस्पर्शी चित्रण होता है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है रेखाचित्र कला का शब्द है। रेखाएं ही इसमें चित्र अंकन का मुख्य आधार होती हैं।

उद्‌गमः— मूलतः 'रेखाचित्र' अंग्रेजी शब्द 'स्केच' (Sketch) का पर्यायवाची है। 'स्केच' (Sketch) में केवल रेखाओं की सहायता से ही किसी व्यक्ति अथवा वस्तु का आकर्षक एवं भावपूर्ण चित्र अंकित किया जाता है उसे देखते ही उस व्यक्ति अथवा वस्तु का सम्पूर्ण रूप साकार हो जाता है। इसी में कलाकार की सफलता निहित है। किसी भी प्रकार की पृष्ठ भूमि और रङ्गों का प्रयोग इन चित्रों के लिये नहीं किया जाता। साहित्य में इस प्रकार का चित्रण करने के लिये रेखाओं के स्थान पर शब्दों का प्रयोग किया जाता है। अतः हिन्दी साहित्य में यह शब्द पाश्चात्य साहित्य की देन कहा जा सकता है। यही इसका प्रेरणा स्त्रोत है। अंग्रेजी के 'Sketch' शब्द से ही भारतीय लेखक प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुये तथा उसे एक सर्वथा मौलिक स्वरूप प्रदान करने का प्रयत्न किया।

स्वरूपः— पाश्चात्य साहित्य में समृद्ध एवं उन्नत यह विधा जब हिन्दी साहित्य ने ग्रहण की तो विभिन्न विद्वानों ने इसकी विभिन्न विशेषताओं का उद्‌घाटन करते हुए इसकी एक परिभाषा निर्धारित करने का प्रयत्न किया। अतः रेखाचित्र का स्वरूप स्पष्ट करने के

लिये कुछ विद्वानों की परिभाषाओं को उद्धृत करना असंगत न होगा ।

डा० भागीरथ मिश्र के विचार—

डा० भागीरथ मिश्र ने 'रेखाचित्र' के लिए 'रेखाचित्र' तथा 'शब्द चित्र' दोनों संज्ञाओं को स्वीकार कर अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं:— "शब्द चित्र में किसी व्यक्ति की यथार्थ वास्तविक चारित्रिक विशेषताओं के उभारने का प्रयत्न है, इसमें प्रायः हम पहचान जाते हैं कि अमुक शब्द चित्र हमारे अनुभव से टकराए हुए अमुक व्यक्ति का सा है, × × × × अपने सम्पर्क में आए किसी विलक्षण व्यक्ति अथवा संवेदना को जगाने वाली सामान्य विशेषताओं से युक्त किसी प्रतिनिधि चरित्र के मर्मस्पर्शी स्वरूप को देखी सुनी या संकलित घटन ओं की पृष्ठ भूमि में इस प्रकार उभार कर रखना कि उसका हमारे हृदय में एक निश्चित भाव अङ्कित हो जाए, रेखा चित्र या शब्द चित्र कहलाता है ।"

स्पष्ट है कि रेखाचित्र में प्रमुखतः किसी प्रतिनिधि चरित्र के मर्मस्पर्शी स्वरूप को ही घटनाओं के माध्यम से उभारने का प्रयत्न किया जाता है। इसका प्रेरक एक वास्तविक व्यक्ति होता है जिसके व्यक्तित्व और चारित्रिक विशेषताओं का विश्लेषण शब्द चित्रकार करता है। इसमें आत्मीयता अधिक रहती है। अपने हृदय पर पड़े व्यक्तित्व और प्रभाव को अपने अनुभव के आधार पर शब्द चित्रकार सजीवता के साथ संस्मरणात्मक ढङ्ग से प्रस्तुत करता जाता है। अतः वास्तव में रेखा चित्र किसी व्यक्ति के संस्मरणों का कलात्मक संगठन है।

डा० नगेन्द्र द्वारा निर्धारित परिभाषा—

डा० नगेन्द्र रेखाचित्रों में कथा साहित्य की अन्य विधाओं के समान

कथानक का उतार चढ़ाव स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार तो रेखा चित्रों में घटना का स्थान नगण्य है क्योंकि घटना का भार वे वहन नहीं कर सकते। "चित्रकला का यह शब्द जब साहित्य में आया तो इसकी परिभाषा भी स्वभावतः इसके साथ आई, अर्थात् रेखाचित्र एक ऐसी रचना के लिए प्रयुक्त होने लगा जिसमें रेखाएँ हों पर मूर्त्तरूप अर्थात् उतार-चढ़ाव—दूसरे शब्दों में कथानक का उतार-चढ़ाव न हो, तथ्य का उद्घाटन मात्र हो। पूर्व आयोजन अथवा आयोजित विकास न हो। रेखा चित्र में तथ्य खुलते जाते हैं, उनकी संयोजना नहीं होती।"

डा० गोविन्द त्रिगुणायत का वक्तव्य—

डा० गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार— ' × × × × साहित्य की अन्य विधाओं के सदृश ही रेखा चित्र भी कलाकार की किसी व्यक्ति वस्तु या घटना के पूर्व सन्निकर्ष से उद्भूत क्रियाओं और प्रति-क्रियाओं की अभिव्यक्ति है।"

इस परिभाषा पर ध्यान देने से विदित होता है कि स्मृति पटल पर अंकित किसी भी व्यक्ति, वस्तु, अथवा घटना का रेखा चित्र खींचा जा सकता है, और साथ ही उसमें साहित्य का पूर्व सन्निकर्ष भी अनिवार्य है। इस सन्निकर्ष से उद्भूत क्रियाएं और उन क्रियाओं के साथ हुई प्रतिक्रियाओं की चित्रमय अभिव्यक्ति ही रेखाचित्र है।

ऊपर उद्धृत की गई विभिन्न परिभाषाओं से रेखाचित्र की कुछ सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार स्पष्ट की जा सकती हैः—

(अ) रेखाचित्र का प्रमुख उद्देश्य चारित्रिक उभार है, किसी व्यक्ति की आन्तरिक और बाह्य चारित्रिक विशेषताओं का प्रभावशाली चित्रण रेखा चित्रकार अपने संस्मरणों के आधार पर करता है।

(आ) इसमें घटनाओं का उतार-चढ़ाव अपेक्षित नहीं सूक्ष्म वाक्य

विन्यास एवं शब्द योजना के आधार पर स्मृतियों की शब्दमयी अभिव्यक्ति ही रेखा चित्रकार का ध्येय होना चाहिए।

(इ) रेखाचित्र में निजी अनुभूतियों का विशेष महत्व होता है और इस प्रकार उसमें व्यक्तित्व का अधिक योग रहता है।

इन सबके अतिरिक्त रेखा चित्रकार का हृदय संवेदन शील और दृष्टि सूक्ष्म पर्यवेक्षण–निपुण होनी चाहिए. क्योंकि साहित्यकार होने के साथ साथ वह एक चित्रकार भी होता है। साहित्यिक रेखा चित्रों में शब्द वही काम करते हैं जो चित्रकला के रेखाचित्र में रेखाएँ करती हैं, अर्थात् जिस प्रकार रेखाओं द्वारा निर्मित उन भावमय चित्रों में चित्रित व्यक्ति अथवा वस्तु का सम्पूर्ण व्यक्तित्व अथवा स्वरूप हमारे सम्मुख उभर आता है उसी प्रकार साहित्यिक रेखाचित्रों में भी कलाकार की सफलता चुने हुये शब्दों द्वारा अपने विषय का एक साकार चित्र प्रस्तुत करने में है। वह अनंगल शब्दों, उखड़े वाक्यों तथा शिथिल भाषा का प्रयोग नहीं कर सकता। चुने हुये शब्दों की तूलिका से ही वह ऐसा चित्र अंकित करता है कि अनुभूत भावों का विधान करने में समर्थ हो। अतः रेखा चित्र उस साहित्यिक स्वरूप को कहा जा सकता है जिसमें किसी वस्तु अथवा व्यक्ति की आन्तरिक एवं बाह्य विशेषताओं का सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि के द्वारा स्मृति पत्र पर अंकित रेखाओं के आधार पर भावना पूर्ण एवं प्रभावशाली चित्रण हो तथा वह चित्रण उभर कर हमारे सम्मुख एक सजीव प्रतिमा के रूप में उपस्थित हो।

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर रेखाचित्रों के वर्तमान स्वरूप का विश्लेषण करने का प्रयत्न तो किया गया है; परन्तु यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक रेखाचित्र इस कसौटी पर खरा उतरे। यह तो केवल सामान्य दिशा–निर्देश का साधन है। इसमें रेखाचित्रों के सामान्य रूप का ही स्पष्टीकरण किया गया है।

———o———

रेखाचित्र तथा अन्य साहित्यिक विधाएं

रेखाचित्रों में कुछ ऐसी विशेषतायें देख कर जो अन्य साहित्यिक विधाओं में भी मिल जाती है; कुछ लोग प्रायः इन्हें संस्मरण, कहानी आदि भी कह देते हैं। इतना ही नहीं एक ही रचना को कोई कहानी कहता है, कोई संस्मरण तथा कोई उसे ही रेखाचित्र कह देता है। परन्तु रेखाचित्र की शिल्प विधि अपनी ही है; यह तो भावना का सश्लिष्ट चित्रण है। अतः अन्य साहित्यिक विधाओं तथा रेखाचित्रो मे क्या समानताएं एवं असमानताए है इसे अच्छी तरह समझ लेने से इसका स्वरूप और भी स्पष्ट हो जाएगा। सर्वप्रथम संस्मरण को लिया जाएगा।

संस्मरण तथा रेखाचित्र

अन्य साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा संस्मरण रेखाचित्रों के सर्वाधिक निकट है। किसी साधारण अथवा विशिष्ट व्यक्ति की किसी भावनापूर्ण एव संवेदनशील स्मृति के प्रत्यक्षीकरण को सस्मरण कहते है। दूसरी तरफ रेखाचित्र में भी किसी व्यक्ति अथवा वस्तु की स्मृति से प्रभावित होकर उसकी चारित्रिक विशेषताओं का चित्रण रहता है। आवश्यक नहीं कि यह चित्रण किसी महान् विभूति का हो। इस समाज का उपेक्षित से उपेक्षित व्यक्ति भी रेखाचित्र का नायक हो सकता है। परन्तु इतनी समानता होने पर भी दोनो मे मौलिक अन्तर है। दोनों ही स्वतन्त्र गद्य विधाएं है; इनको एक दूसरे का पर्यायवाची समझना भ्रमपूर्ण है।

अधिकांशतः सस्मरणों में आत्मकथन रेखाचित्रों की अपेक्षा अधिक होता है। रेखाचित्र अपने सम्बन्ध में प्रायः मौन ही रहता है; परन्तु

महादेवीजी के रेखाचित्रों में तो आत्मकथन स्थान-स्थान पर आया है।

सफल रेखाचित्र लिखने के लिये प्रायः चित्रात्मक शैली का प्रयोग करना आवश्यक है; संस्मरणों के लिये ऐसा अनिवार्य नहीं।

रेखाचित्रों का नायक अप्रसिद्ध, दीन एवं उपेक्षित व्यक्ति भी हो सकता है परन्तु संस्मरण प्रायः प्रसिद्ध व्यक्तियों के ही लिखे जाते हैं।

अतः साधारण दृष्टि से देखने पर दोनों एक प्रतीत होने पर भी इनके कुछ अन्तर ऐसे हैं जो दोनों को विभिन्न विधाओं के रूप में प्रतिष्ठित करने में समर्थ है।

कहानी तथा रेखाचित्र

कुछ विद्वानों ने तो कहानी की परिभाषा की परिधि में ही रेखाचित्र की परिभाषा को समेट लिया है। डा० नगेन्द्र तो कहानी के लिए घटना का होना आवश्यक मानते हैं तथा रेखाचित्र के लिये इसका न होना अनिवार्य; घटना का भार वे वहन नहीं कर सकते परंतु नवीन कहानीकारों ने अपनी परिभाषा में घटना को कहानी के लिए भी आवश्यक नहीं माना; फलतः आज की कहानी चरित्र प्रधान बनती जारही है। इस प्रकार रेखाचित्र की यह विशेषता नवीन कहानी में दृष्टिगत होने के कारण ही कुछ विद्वान रेखाचित्रों को कहानी कह देते हैं। श्री दर के मन्तव्य से "यह धारणा गलत है कि घटना की प्रधानता रेखाचित्र को कहानी से अलग करती है। कहानी के लिये घटना बिल्कुल अनिवार्य नहीं और इसके अतिरिक्त घटना केवल स्थूल और भौतिक ही हो—यह भी आवश्यक नहीं, वह मानसिक भी हो सकती है। इसी प्रकार रेखाचित्रों में भी घटना का एक दम अभाव नहीं हो सकता। अगर यह कहा जाये कि रेखाचित्र में चरित्र अंकन की प्रधानता होती है तो यह भी कहानी के क्षेत्र से बाहर की चीज नहीं है। आज कहानी की परिभाषा इतनी व्यापक और उसकी रूपरेखा

इतनी शिथिल हो गई है कि रेखाचित्र नाम की चीज अपने सभी रूपों में उसके भीतर ही आ जाती है।

इतना साम्य होने पर भी इन दोनों का शिल्प विधान एवं आत्मा एक नहीं है। इनमें मौलिक अन्तर है। स्थूल दृष्टि से देखने पर रेखा-चित्र कहानी का एक खण्ड चित्र लगता है, परन्तु यह अपने आप में एक स्वतन्त्र विधा है।

कहानी का आधार सर्वथा कल्पित भी हो सकता है, किसी सच्ची घटना पर भी कहानी की नींव खड़ी की जा सकती है परन्तु रेखाचित्र तो केवल यथार्थ धरातल पर ही खींचे जा सकते हैं। उनका आधार पूर्णतः कल्पित नहीं हो सकता। ये तो किसी वास्तविक व्यक्ति की चारित्रिक विशेषताओं की स्मृति के आधार पर मार्मिक तत्वों को उभार कर पाठक के सम्मुख रखते हैं।

रेखाचित्रों का प्रमुख उद्देश्य चारित्रिक उभार है; इसके विपरीत कहानी में कथानक, चरित्र वर्णन शैली, उद्देश्य, सम्वाद आदि सब का समन्वित रूप रहता है। घटनाओं का किस प्रकार क्रम पूर्वक आयोजन किया जाए—इस विषय पर भी कहानीकार को विचार करना पड़ता है परन्तु शब्द चित्रकार अपने चित्रण को कहीं से भी प्रारम्भ कर सजीवता के साथ प्रभाव पूर्वक ढंग से स्पष्ट करता जाता है।

सांकेतिकता का महत्व यद्यपि दोनों में समान है, परन्तु प्रो० बालकृष्ण के अनुसार "रेखाचित्र में रेखाओं का आधार होता है, रंग का नहीं, अतएव उसमें संकेत एवं व्यंजना का प्राधान्य रहता है। क्योंकि रेखाएं रंग की अपेक्षा सूक्ष्म हैं, इसलिए इन दोनों का मूल अन्तर यही है कि रेखाचित्र सांकेतिक अधिक होता है।" अर्थात् रेखा-चित्रों में सांकेतिकता को प्रधान स्थान मिलता है।

कहानी में गतिशीलता अधिक होती है जब कि रेखाचित्रों में स्थिरता रहती है। श्री तिवारी जी के मत से "कहानी गत्यात्मक होती है रेखाचित्र स्थिर।" इसके अतिरिक्त "कहानी में रेखाचित्र से एक पहलू अधिक होता है। यदि रेखाचित्र में एक पहलू होता है तो कहानी में दो, अगर रेखाचित्र में दो मानिए तो कहानी में तीन। अर्थात् यदि रेखाचित्र में सिर्फ लम्बाई ही है तो कहानी में लम्बाई के अतिरिक्त चौड़ाई भी होती है और अगर रेखाचित्र में लम्बाई तथा चौड़ाई है तो कहानी में मोटाई तथा गोलाई भी माननी पड़ेगी। × × × × रेखाचित्र अपनी स्थिरता में कुछ गतिहीन हो जाता है, वह शेष से कट कर अपने आप में कुछ स्वतन्त्र हो जाता है, इसलिए उसमें रस और तीव्रता की कमी होती है। वह कुछ सैक्यूलर होता है।" —जेनेन्द्र—

रेखाचित्रों की अपेक्षा कहानी में सामाजिकता अधिक रहती है। रेखाचित्रों में जहाँ एक व्यक्ति की तस्वीर सामने आती है, वहाँ कहानी व्यक्ति को समाज के संसर्ग में अंकित करती है।

डा० नगेन्द्र कहानी और रेखाचित्र शरीरगत अन्तर ही मानते हैं प्राणगत नहीं, "सामान्यत: कहानी और रेखाचित्र एक दूसरे के इतने निकट है कि दोनों में अन्तर शरीर गत है प्राणगत नहीं।"

रेखाचित्र तथा निबन्ध

कुछ विद्वानों ने रेखाचित्र को निबन्ध के ही अन्तर्गत स्वीकार किया है। स्थूल दृष्टि से अवलोकन करने पर इन दोनों विधाओं में भी समानता दृष्टिगत होती है। लेखक के व्यक्तित्व की छाप एक सफल निबन्ध की मुख्य विशेषता है और रेखाचित्र में भी ऐसा होता है, अत: दोनों में कोई अन्तर दृष्टिगत नहीं होता परन्तु दोनों के अभिव्यक्त करने का ढङ्ग अलग है। अपनी अनुभूतियों को निबन्धकार वर्णन शैली से अभिव्यक्त करता है, परन्तु रेखाचित्र-कार को यह स्वतन्त्रता नहीं है।

एक वर्णन को प्रधानता देता है, दूसरा चित्रण को। रेखा चित्रकार अपनी स्मृतियों को कल्पना के रंग में रंग कर अधिक संवेदन शील बना कर प्रस्तुत करता है परन्तु निबन्ध में कल्पना को प्राय: कम स्थान मिलता है।

श्री दान बहादुर पाठक 'दर' ने इन दोनों विधाओं का अन्तर इस प्रकार स्पष्ट किया है, "रेखाचित्र एक ही व्यक्ति या स्थान का होता है जबकि निबन्ध के लिए ऐसा कोई विषय गत बन्धन नहीं। निबन्धकार एक के क्रम में अनेक की चर्चा करने के लिए स्वतन्त्र होता है, ××× निबन्ध और रेखाचित्र दोनों मे कलात्मक भव्यता होती है। निबन्ध में सघनता है तो रेखाचित्र में मुखरता — छवि अंकन की आकुलता। हाँ रेखाचित्र में सभी रेखाओं के स्वर अलग-अलग होते हैं और एकाकार भी किन्तु निबन्ध में प्रभावोत्पादकता का ही एक स्वर होता है और वह भी गुरु गम्भीर।"

अत: संस्मरण कहानी एवं निबन्ध आदि विधाओं के साथ समानता होने पर भी रेखाचित्र अपनी कुछ विशिष्टताओं के कारण इन सबसे अलग एक स्वतन्त्र साहित्य विधा है। यथार्थता की विश्वसनीयता, वैयक्तिक सम्पर्क की सजीवता तथा शैली की मर्मस्पर्शिता आदि विशेषताओं के कारण यह साहित्यिक विधा मानवता का विकास करने का महत्वपूर्ण साधन है।



रेखाचित्रों के विकास का संक्षिप्त इतिहास

रेखाचित्र किसी पूर्व भारतीय परम्परा की देन न होकर, सर्वथा आधुनिक युग की सृष्टि है। इसकी वास्तविक परम्परा का विकास आधुनिक युग के मध्यकाल से मानना चाहिए। इससे पहले कोई ऐसी रचना उपलब्ध नहीं होती जिसे रेखाचित्र कहा जा सके। हिन्दी रेखाचित्रों का प्रेरणा स्त्रोत पाश्चात्य साहित्य है। आधुनिक काल के प्रारम्भ में हमारा गद्य-साहित्य पाश्चात्य गद्य-साहित्य के सम्पर्क में आया। पाश्चात्य में 'स्केच' (रेखाचित्र) काफी समृद्ध तथा उन्नत थे, अतः इसके प्रभाव से हिन्दी साहित्य भी अछूता न रहा और इसका विकास गद्य साहित्य की स्वतन्त्र विधा के रूप में होने लगा। हिन्दी साहित्य में उपलब्ध प्रारम्भिक रेखाचित्रों पर इन्ही 'स्केचों' का प्रभाव दृष्टिगत होता है। आधुनिक युग के मध्यकाल से ही यह परम्परा विकास पथ पर अग्रसर होने लगी।

पद्मसिंह शर्मा को इस परम्परा का जनक कहा जा सकता है। इनके 'पद्म पराग' में संग्रहित रेखाचित्रों में कला तथा शिल्प का उत्कर्ष तो नहीं मिलता परन्तु सर्वप्रथम रेखाचित्रों के अंकन का प्रयास इन्होंने ही किया, इसलिए इस परम्परा में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

सन् १९३६-३७ के आस-पास श्रीराम शर्मा का एक संग्रह 'बोलती प्रतिभा' के नाम से प्रकाशित हुआ। यद्यपि इस संग्रह में अधिकांश कहानियाँ ही है, तथापि कुछ रचनाओं जैसे 'वरदान' 'अपराधी' 'पीताम्बर' 'रतना की आया' आदि में रेखाचित्रों के लक्षण पर्याप्त मात्रा में देखे जा सकते हैं।

पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के 'कुल्लीभाट' 'चतुरी चमार' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' चरित्र प्रधान लघु उपन्यास हैं। इनमें रेखाचित्रों की कई विशेषताएं देखी जा सकती हैं। इसलिए इन्हे अधिकांश आलोचकों ने रेखाचित्र की संज्ञा तो दी, परन्तु संक्षिप्तता —जो रेखाचित्र की प्रमुख विशेषता है, इनमें उपलब्ध नहीं होती। अतः इन्हें पूर्णतः रेखाचित्र नहीं कहा जा सकता।

सन् १९४१ में महादेवीजी का प्रथम रेखाचित्र संग्रह 'अतीत के चलचित्र' प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात इनके दो और संग्रह 'स्मृति की रेखाएं' और 'पथ के साथी' प्रकाशित हुए। 'अतीत के चलचित्र' में प्रथम बार सफल रेखाचित्र के दर्शन हुए। कुछ विद्वान इसे ही हिन्दी का प्रथम सफल रेखाचित्र मानते हैं। इन रेखाचित्रों में स्थान—स्थान पर महादेवीजी के व्यक्तित्व के दर्शन भी होते हैं। इनके पात्रों में स्वच्छन्द मानवता के उन प्रकाश-उज्ज्वल रूपों के दर्शन होते हैं जो समाज की सड़ी-गली रूढ़ियों के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष करते हुए पाठक की सहानुभूति तथा स्नेह को पाने में समर्थ होते हैं।

रेखाचित्रो की इस परम्परा मे रामवृक्ष बेनीपुरी का स्थान महत्त्वपूर्ण है, 'माटी की मूरतें', 'लाल तारा', 'गेहूं और गुलाब' आदि इनके रेखाचित्र संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इन्होने अधिकांशतः उपेक्षित लोगों को अपनी सहानुभूति का पात्र बनाया है। इनके कुछ चित्र बहुत प्रभावशाली बन पड़े हैं। बेनीपुरीजी प्रतीकात्मक रेखाचित्र लिखने में सिद्धहस्त हैं।

प्रकाशचन्द्र गुप्त का एक संग्रह 'पुरानी स्मृतियां और नए स्केच' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। इसमें इनके अनेक रेखाचित्र मिलते हैं। इनकी रचनाओं को एक सर्वथा मौलिक एवं स्तुत्य प्रयास माना जा

सकता है, परन्तु महादेवीजी की रचनाओं में अनुभूति की जो गहराई है वह इनमें उपलब्ध नहीं होती।

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर के रेखाचित्र 'भूले हुए चेहरे' नामक संग्रह में संग्रहीत हैं। यह भी हिन्दी के अच्छे रेखाचित्रकार हैं तथा इस परम्परा में इनका स्तुत्य योगदान है।

बनारसीदास चतुर्वेदी ने भी इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इनके रेखाचित्र 'रेखाचित्र और संस्मरण' नामक शीर्षक से प्रकाशित हुए हैं। परन्तु इसमें इनके संस्मरण ही अधिक हैं। अधिकांशतः इन्होंने ख्याति प्राप्त लोगों के चित्र ही अंकित किये हैं।

'रेखाएं बोल उठीं' देवेन्द्र सत्यार्थी का प्रसिद्ध रेखाचित्र संग्रह है। इसमें 'आज मेरा जन्मदिन है', 'चिरनूतन चित्र', 'दादा दादी के चित्र', 'अच्छे भले आदमी की बात' आदि रेखाचित्रों में भावुकता एवं तथ्य निरूपण की प्रधानता है।

अन्य रेखाचित्रकारों में उपेन्द्रनाथ अश्क, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, रघुवीर सहाय, विष्णु प्रभाकर, विद्या माथुर, सत्यवती मल्लिक, हर्षदेव मालवीय आदि उल्लेखनीय हैं। यद्यपि बहुत लेखक अपनी लेखनी से रेखाचित्रों का भण्डार भर रहे हैं, फिर भी इस विधा को समृद्ध एवं उन्नत नहीं माना जा सकता। अन्य गद्य विधाओं की तुलना में यह अभी बहुत पीछे है। बाबू गुलाबराय के शब्दों में " × × × हिन्दी में इसका बाहुल्य नहीं तो अभाव भी नहीं।" अतः कुछ रचनाएं तथा उनके लेखक इतने महत्त्वपूर्ण भी हैं जिन्होंने इसके विकास में स्तुत्य योगदान दिया है। फिर भी इसमें अभी साधना की अपेक्षा है।

कला के इस रूप का सन्तोषजनक विकास न होने का कारण यह हो सकता है कि वस्तुतः रेखाचित्रों का अंकन करना बड़ी साधना का

मार्ग है । बनारसीदास चतुर्वेदी के शब्दों में "रेखाचित्रकार प्रकृति की जड़ अथवा चेतन किसी भी वस्तु को अपने शब्द शिल्प से सजीव कर देता है । जिस आदमी को जीवन के विविध अनुभव प्राप्त नहीं हुए, जिसने आँख खोलकर दुनियाँ को देखा नहीं, जिसे कभी जीवन संग्राम में जूझने का अवसर नहीं मिला, जो संसार के भले बुरे आदमियों के संसर्ग में नहीं आया, मनोवैज्ञानिक घात प्रतिघातों का जिसने अध्ययन नहीं किया, जिसने एकान्त में बैठ कर जिन्दगी के भिन्न २ प्रश्नों पर विचार नहीं किया भला वह क्या सजीव चित्रण कर सकता है ।"



महादेवी वर्मा के रेखाचित्र

एक परिचय

महादेवी वर्मा ने अपनी भावनाओं को शब्दों और रेखाओं—दोनों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। एक सशक्त कवियित्री एक अच्छी निबन्धकार होने के साथ-साथ वे चित्र अंकन की कला में भी प्रवीण हैं। 'दीपशिखा में संग्रहीत कविताओं के साथ ही उनके बनाए चित्रों के भी दर्शन होते हैं। चित्रकला में प्रवीण महादेवीजी ने शब्दों के द्वारा भी जो चित्र अंकित किये है, उनमें भी वे सफल हुई हैं। समस्त साहित्य में इनके शब्द चित्रों की छटा देखने को मिलती है। अपने गीतों में भी इन्होंने कहीं-कहीं प्रतीकों द्वारा छोटे-छोटे चित्र प्रस्तुत किए हैं। चित्र कला की शैली को इन्होंने प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में अपनाया है। इस शैली द्वारा रचनाओं में जो कलात्मक सौन्दर्य आया है, उसी ने महादेवी को इतना लोकप्रिय बनादिया है।

अपने काव्य में महादेवी व्यक्ति प्रधान हैं। वहां केवल व्यक्ति ही उनकी साधना है। प्रेम की अतृप्त प्यास, वासनाहीन विरह पीड़ा, विरक्तिमय अनुराग—यही उनका काव्य वर्ण्य है। परन्तु अपने गद्य में, अपने रेखाचित्रों में महादेवी का समाज के प्रति आकर्षण है। काव्य की व्यक्ति प्रधान कला यहां समष्टि प्रधान होगई है। यहां समाज को उन्होंने यथार्थवादी दृष्टिकोण से देखा है। इन रेखाचित्रों में इनकी सहानुभूति समाज में व्याप्त दुख, दैन्य, अशिक्षा, उत्पीड़न आदि के प्रति विराट रूप स अभिव्यक्त हुई है। जनजीवन और समाज का वास्तविक प्रतिबिम्ब इन्हीं रचनाओं में लक्षित होता है।

साहित्य में इन रेखाचित्रों की विशिष्टता का एक और भी कारण है। वह यह कि इन रेखाचित्रों के पात्र महादेवी की जीवन कथा को

छूने वाले अंग हैं। उनका जीवन, स्वभाव, विचार आदि बहुत कुछ इनके माध्यम से स्पष्ट हो जाता है, जैसा कि 'अतीत के चलचित्र' में उन्होंने स्वयं लिखा है "इन स्मृति चित्रों में मेरा जीवन भी आगया है। यह स्वाभाविक भी था। अँधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुँधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते हैं, उसके बाहर तो वे अनन्त अँधकार के अंश हैं। मेरे जीवन की परिधि के भीतर खड़े होकर चरित्र जैसा परिचय दे पाते हैं, वह बाहर रूपांतरित हो जायगा।"

महादेवीजी ने उन उपेक्षित चरित्रों को अपनाया है जिन में भारतीय समाज की ज्वलन्त समस्याएं साकार हैं। भारतीय जीवन के वे कुरूप चिन्ह हैं जो अशिक्षा, शोषण एवं दूसरी तरफ लेखिका की विराट सहानुभूति से सरल एवं दीन बन गए हैं। भारतीय नारी के विविधि रूपों का इनमें विशेष रूप से चित्रण किया गया है।

महादेवी वर्मा के तीन रेखाचित्र सग्रह अब तक प्रकाशित हो चुके हैं (१) अतीत के चलचित्र (२) स्मृति की रेखाएं (३) पथ के साथी।

'अतीत के चलचित्र' एवं 'स्मृति की रेखाएं'—इन दोनों संग्रहों में लेखिका के अपने जीवन संस्मरण भी आगए है, पर फिर भी रेखाचित्रों की संख्या ही अधिक है।

अतीत के चलचित्र

इस संग्रह में ग्यारह रेखाचित्र संकलित हैं। इनमें समाज के लग-भग सभी प्रकार के दीन, दलित निम्नवर्गीय पात्रों के तथा नारी के विविध रूपों के रेखाचित्र अंकित हुए हैं। करुणा के आधार पर इन निम्न वर्ग के व्यक्तियों की जीवन रेखाएं स्पष्ट करने के लिए लेखिका ने केवल मन या बुद्धि तथा करुणा का भाव ही नहीं रखा, अपितु इसको कर्म रूप में भी परिवर्तित करके रखा है। गाँवों में बच्चों को पढ़ाया है और पीड़ित नारियों का उद्धार किया है।

इस संग्रह का पहला रेखाचित्र एक श्रमजीवी नौकर के जीवन की झाँकी है जो घर से छुटपन में भाग आता है और लेखिका के परिवार में बचपन से प्रौढ़ावस्था तक ईमानदारी के साथ काम करता है।

दूसरे रेखाचित्र में एक बाल विधवा का चित्रण है जो परिवार के अत्याचार एवं उपेक्षापूर्ण वातावरण में बिना बोले ही घुट घुट कर अपना जीवन बिता देती है।

तीसरे संस्करण में विमाता के दुर्व्यवहार से पीड़ित एक निरीह बालिका का शब्द चित्र है।

चौथे रेखाचित्र में भंगियों के पारिवारिक चित्रण के साथ उपेक्षित भारतीय नारीत्व के रूप–दलित समाज की नारी सबिया का कर्मठ चरित्र है, जो अशिक्षित और पीड़ित होते हुए भी उत्सर्ग की महान भावना से अनुप्राणित है।

पाँचवा शब्द चित्र एक बाल–विधवा का है जिसे ३० वर्ष तक वैधव्य का दुख भोग कर अन्त में घर वालों के अत्याचारों से तंग आकर एक ५४ वर्ष के वृद्ध की पत्नी बनना पड़ा और कुछ वर्ष उपरान्त पुनः विधवा बन गई।

छठे संस्करण में एक ऐसी बाल–विधवा की करुण कहानी है जो १८ वर्ष की अवस्था में किसी पुरुष की वासना का शिकार बन व्यभिचार से उत्पन्न संतान की माँ बन गई।

सातवें रेखाचित्र में एक नन्हें, अबोध एवं भावुक शिष्य की करुण कथा है।

आठवाँ रेखाचित्र एक वेश्या–पुत्री की हृदय–विदारक करुण कहानी है, जिसने किसी की पत्नी बन जाने का साहस किया, परन्तु समाज ने सदैव उसकी अवहेलना की। पति की मृत्यु होजाने के

उपरान्त भी वह वेश्या नहीं बनी। ऐसी ही वीर नारी इस रेखाचित्र की नायिका है।

निम्न वर्ग के व्यक्ति प्रायः कितने महान मानव होते हैं, यह इस संग्रह के नवें रेखाचित्र से स्पष्ट हो जाता है। अन्धे अलोपी की करुण गाथा इस चित्र में साकार हो उठी है।

दसवां संस्करण एक कुम्हार दम्पति बदलू और रधिया का है।

अन्तिम रेखाचित्र में लछमा का रेखाचित्र प्रस्तुत किया गया है। उसका लेखिका के लिए स्नेह का प्रबल आकर्षण ही इस रेखाचित्र का आधार है।

इन रेखाचित्रों में सामाजिक चेतना भी है, विद्रोह पूर्णवाणी भी है और नारी के प्रति होने वाले अत्याचारों की कहानी भी है। नारी मात्र के प्रति उन्हें विशेष सहानुभूति है। विधवा, बाल–विधवा एवं अन्य किसी प्रकार से प्रताड़ित नारियों के विषय में कहने का अवसर जहाँ भी मिला है, उन्होंने बहुत कुछ कह दिया है। किसी की वासना का शिकार बन एक नारी की, व्यभिचार से उत्पन्न सन्तान को समाज सहन नहीं कर सकता तो उसका अन्तर विद्रोह कर उठता है "यदि स्त्रियाँ अपने शिशु को गोद में लेकर साहस से कह सकें कि बर्बरो! तुमने हमारा नारीत्व पत्नीत्व सब ले लिया, पर हम अपना मातृत्व—किसी प्रकार न देंगीं, तो इनकी समस्याएं तुरन्त सुलझ जाएं।"

एक नारी पर होने वाले अत्याचार के प्रति वे कह उठती हैं "एक पुरुष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरुष समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है और एक स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रियाँ उसके अकारण दण्ड को अधिक भारी बनाए बिना नहीं रहती।"

स्मृति की रेखाएं

स्मृति की रेखाएं सात रेखाचित्रों का संग्रह है। प्रथम रेखाचित्र में एक ग्रामीण वृद्धा के जीवन संघर्ष की कहानी जो जीवन के अन्तिम दिनों में काम की तलाश करती हुई महादेवीजी के पास आई और अपने हृदय में व्याप्त ममता तथा स्नेह के कारण उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गई।

चीनी फेरीवाले की अश्रुओं भरी करुण कहानी और लेखिका के प्रति उसके अगाध स्नेह तथा विश्वास का संवेदन शील चित्र द्वितीय रेखाचित्र में प्रस्तुत किया गया है।

तीसरे रेखाचित्र में दो पहाड़ी कुलियों जंगबहादुर और धनसिंह के मानवीय गुणों का मार्मिक चित्रण किया है।

चतुर्थ संस्करण में एक ब्राह्मण परिवार की कुलवधु—मुन्नू की माई का शब्द चित्र है। वह अत्यन्त परिश्रमी है जिसे भिक्षा वृति के प्रति कोई लगाव नहीं। भारतीय गावों का साकार रूप भी इस रेखा-चित्र में चित्रित किया गया है।

पाँचवां रेखाचित्र किसी व्यक्ति विशेष का न रहकर एक सम्पूर्ण समाज का रेखाचित्र बनगया है। कल्पवासी ठकुरी बाबा का रेखाचित्र, अन्य छोटे छोटे रेखाचित्रों को अपनी परिधि में आत्म सात कर लेता है। नागरिक एवं ग्रामीण सभ्यताओं को बड़ी मार्मिकता से प्रस्तुत किया गया है।

अभागी बिबिया ने समाज के अत्याचारों से तंग आकर यमुना में डूबकर अपने जीवन का अन्त कर दिया परन्तु इस पुरुष प्रधान समाज ने यही कहा कि वह किसी के साथ भाग गई है—छठे रेखाचित्र में इसी अभागी नारी का चित्रण किया गया है।

अन्तिम रेखाचित्र गुँगिया का है जिसने अपनी स्वर्गीया बहिन के पुत्र को पाल पोस कर बड़ा किया और वह पुत्र एक दिन साधुओं के गिरोह के साथ भाग गया। गुँगिया इससे व्याकुल हो उठी।

अतः इस संग्रह के रेखाचित्रों के पात्र भी समाज के दलित एवं उपेक्षित व्यक्ति हैं। महादेवीजी ने अपनी सहानुभूति के सहारे उनका अन्तरंग अध्ययन कर इन्हें प्रस्तुत किया है। छठे रेखाचित्र में अभागी बिबिया के प्रति ममत्व भाव देखने योग्य हैं "आज भी जब मेरी नाव, समुद्र का अभिनय करने में बेसुध वर्षा की हरहराती यमुना को पार करने का साहस करती है, तब मुझे वह एक बालिका की याद आए बिना नहीं रहती। एक दिन वर्षा के श्याम मेघाचल की लहराती हुई छाया के नीचे इसकी उन्मादिनी लहरों में उसने पतवार फेंक कर अपनी जीवन—नैया खोल दी थी—उस एकाकिनी की वह जर्जर तरी किस अज्ञात तट पर जा लगी, यह कौन बता सकता है ?"

प्रत्येक व्यक्ति के दुख को दूर करने के लिये वे सदैव तैयार रहती हैं। चीनी की बहिन तथा जंगबहादुर की माँ बनने से उन्हें सन्तोष मिलता है। धनिया और जंगिया के बारे में वे कहती हैं "आज वे दोनों पर्वत पुत्र कहाँ होंगे, सो तो मैं बता ही नहीं सकती, पर उनकी मांजी बनकर मुझे जो सम्मान मिला, वह बताना सहज नहीं।"

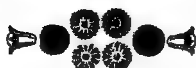
पथ के साथी

इस संग्रह में छह रेखा चित्र संकलित हैं कवीन्द्र रवीन्द्र की जीवन-धारा को 'प्रणाम' शीर्षक से प्रस्तुत किया है, अतः कुल मिला कर सात रेखाचित्र हुए। इनमें महादेवी ने अपने परिचित साहित्यिक बन्धुओं की जीवन-धारा का संस्मरणात्मक रूप में उल्लेख किया है। वर्ण्य विषय की दृष्टि से यह क्रमबद्ध नहीं, एक दूसरे से स्वतन्त्र हैं।

इन रेखाचित्रों में कथानक की पूर्णरूप से गौणता है। इस संग्रह के पात्रों का सम्बन्ध समाज के शिक्षित वर्ग से है; परन्तु इनमें से अधिकांश धनाभाव से पीड़ित हैं। अतः स्वयं अभावग्रस्त होने के कारण दूसरे का दुःख अनुभव करने में समर्थ हैं। निराला की जीवन धारा से सम्बंधित रेखाचित्र इसका सुन्दर उदाहरण है। साहित्यक वर्ग से सम्बन्धित इन पात्रों में दार्शनिकता स्वाभिमान दृढ़ता उदारता व्यवहारिकता आदि गुण पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं। सुभद्राकुमारी चौहान, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, मैथिलीशरण गुप्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी, निराला, जयशंकर प्रसाद, सियारामशरण गुप्त आदि सभी कवियों की निजी विशेषताएं महादेवी ने सजग पारखी की तरह ढूंढ़ निकाली हैं।

.स्थान-स्थान पर महादेवी ने अपने व्यक्तित्व का भी प्रत्यक्ष चित्रण किया है।

लेखिका के इस रेखाचित्र-संग्रह पर हम आगे विस्तार पूर्वक विचार करेंगे।



महादेवी वर्मा की साहित्य साधना

आज महादेवी की गणना हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवियों में की जाती है। छायावादी काव्य में स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद, सर्वश्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला तथा श्री सुमित्रानन्दन पन्त के बाद इन्हीं का नाम आता है। महादेवीजी ने आत्मपरक कविताएं ही अधिक लिखी हैं। भावनाओं का जितना सूक्ष्म वर्णन इनके काव्य में मिलता है, उतना शायद ही किसी अन्य कवि के काव्य में मिल पाये। दूसरी तरफ उनका गद्य भी उनके काव्य से कम महत्वपूर्ण नहीं है। इनके गद्य में यथार्थ जीवन के दर्शन होते हैं। जीवन का प्रत्येक पहलू सजीव होकर सामने आता है।

काव्य क्षेत्र

काव्य रचना में महादेवीजी की रुचि अल्पावस्था से ही रही है। अपनी इस तीव्र इच्छा को पूर्ण करने के लिए वे गणित की कापी तक में कविता लिखा करती थीं और ऐसी बात नहीं कि केवल लिखती ही हों—अच्छा लिखती थीं। बाल्यावस्था से ही घर पर उन्हें चित्रकला तथा संगीतकला की शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया था और इस प्रकार संगीतकला काव्य कला तथा चित्रकला के विकास की सुविधाएं पाकर इनका सुखद बचपन व्यतीत हुआ। ११ वर्ष की अल्पावस्था में ही इन्हें विवाह सूत्र में बांध दिया गया। तदोपरान्त बुद्ध-जीवन एवं उनके दार्शनिक सिद्धान्तों के सम्पर्क में आई, जिसका उन पर गहरा प्रभाव पड़ा और इन्होंने अपनी जीवन दिशा ही बदल ली। इन्हें गृहस्थ-जीवन से विरक्ति होगई। अपने अध्ययन को इन्होंने चालू रखा तथा एम०ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के उपरान्त प्रयाग महिलापीठ की प्रधान आचार्या के रूप में कार्य आरम्भ कर ,बौद्ध भिक्षुणी बनने की इच्छा को

लोक सेवा द्वारा पूर्ण करना चाहा। तभी से वे साहित्य साधना में निरत हैं। परन्तु इनका विचार है कि साहित्य साधना इनके सम्पूर्ण जीवन की साधना नहीं। इस विषय में इन्होंने लिखा है "मेरी सम्पूर्ण कविता का रचना-काल कुछ घंटों में ही सीमित किया जा सकता। प्राय: ऐसी कविताएं कम हैं, जिनके लिखते समय मैंने रात में चौकीदार की सजग वाणी या किसी अकेले जाते हुऐ पथिक के गीत की कोई कड़ी नहीं सुनी।"

महादेवीजी की माता एक विदुषी तथा कलाप्रिय नारी थीं और कभी-कभी कविता लिखा करती थीं अत: कविता के संस्कार उन्हें अपनी माँ के द्वारा भी प्राप्त हुए। आरम्भ में महादेवी अपनी माँ के बनाए पदों में कुछ पंक्तियाँ जोड़ दिया करती थी, स्वतन्त्र कविताएं भी लिखती थीं परन्तु उनका प्रयास यही रहता था कि उनकी तुकबन्दी कोई देख न सके। इस सम्बन्ध में उन्होंने इस प्रकार लिखा है "माँ से पूजा आरती के समय सुने हुए मीरा, तुलसी आदि के स्वरचित पदों के संगीत पर मुग्ध होकर मैंने ब्रजभाषा में पद रचना आरम्भ की थी। मेरे प्रथम हिन्दी-गुरु भी ब्रजभाषा के ही समर्थक थे अत: उल्टी-सीधी पद-रचना छोड़कर मैंने समस्या-पूर्तियों में मन लगाया। बचपन में जब पहले पहल खड़ी बोली की कविता से मेरा परिचय पत्रिकाओं द्वारा हुआ तब उसमें, बोलने की भाषा में ही कविता लिखने की सुविधा देख कर मेरा अबोध मन उसी ओर उत्तरोत्तर आकृष्ट होने लगा। गुरु उसे कविता मानते ही न थे अत: छिपा-छिपा कर मैंने बोला और हरि-गीतिका में भी लिखने का प्रयत्न किया। माँ से सुनी एक करुण कथा का प्राय: सौ छन्दों में वर्णन कर मैंने मानो अपनी खण्ड काव्य लिखने की इच्छा भी पूरी करली। बचपन की वह विचित्र कृति कदाचित खो गई है। × × × × करुणा बहुत होने के कारण बुद्ध सम्बन्धी साहित्य भी मुझे बहुत प्रिय रहा है।"

संक्षेप में इनके सम्पूर्ण काव्य का विवरण इस प्रकार है—नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत और दीपशिखा। नीहार और नीरजा और रश्मि की बहुत सी चुनी हुई कविताएं एक सचित्र संग्रह 'यामा' में संकलित की गई हैं।

'नीहार' इनकी प्रारम्भिक कृति है। इसमें सहज अनुभूति का प्राधान्य है। कवयित्री के मन में वेदना है, प्रियतम के रूप दर्शन की लालसा है परन्तु उसके रूप का कोई निश्चित आकार उसके सामने नहीं है। यह केवल जिज्ञासा, कौतूहल, वेदना आदि का ही छुटपुट चित्रण है। स्वयं महादेवी के शब्दों में "नीहार के रचना काल में मेरी अनु-भूतियों में वैसी ही कुतूहल मिश्रित वेदना उमड़ आती थी जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहली उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न होती है।"

'रश्मि में कवयित्री की अनुभूतियाँ चिन्तन के आलोक में आगई हैं। इस कृति में कवयित्री दार्शनिक बन गई है, साथ ही उसका वेदना के लिये ममत्व भी परिलक्षित होता है। इस प्रवति को महादेवी ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है "रश्मि को उस समय आकार मिला जब मुझे अनुभूति से अधिक उसका चिन्तन प्रधान होगया था।"

'नीरजा' में इनकी अट्ठावन चिन्तन एवं अनुभूति प्रधान कविताएं संग्रहीत हैं। यह कवयित्री की उस समय की रचना है जब इनके हृदय और मस्तिष्क—भाव और चिन्तन में समन्वय होगया था जो कि इस प्रकार के उत्कृष्ट काव्य की रचना के लिए अनिवार्य भी है। उसमे कवयित्री की वेदना 'अश्रुसिक्त है, इन आँसुओं की परिणति आनन्द में होती है। अतः 'नीरजा' में अश्रु और आत्मानन्द का मधुर समन्वय है।

'सान्ध्यगीत' का रचनाकाल सन् १९३४–१९३६ है। इस रचना में कवयित्री की गति स्थिर अनवरत और सुनिश्चित है। इस कृति में भावपक्ष

अपेक्षाकृत अधिक मुखर हुआ है। विरह ही उसके जीवन में आच्छादित हुआ जान पड़ता है। कवयित्री के चिन्तन की भी यहाँ निश्चित दिशा लक्षित होती है।

'दीपशिखा' ५१ गीतों का संग्रह है। इस कृति में कवयित्री का आत्मविश्वास अपनी चरम परिणति पर पहुँच गया है। महादेवी ने अपनी इस रचना का परिचय इस प्रकार दिया है "दीपशिखा में अवि-श्वास का कोई कम्पन नहीं है। नवीन प्रभात के वैतालिकों के स्वर के साथ इसका स्थान रहे, ऐसी कामना नहीं, पर गत की सघनता को इसकी लौ झेल सके, यह इच्छा तो स्वाभाविक रहेगी।"

गद्य क्षेत्र

महादेवी वर्मा के गद्य का आधार यथार्थ की कठोर भूमि है। उनका गद्य समष्टि केन्द्रित है। यथार्थ जीवन का मार्मिक चित्रण इन्होंने इसमें चित्रित किया है। अमृतराय के शब्दों में "महादेवी का गद्य साहित्य मूलतः समाज केन्द्रित है। उसमें जनता के पीड़ित जीवन को स्वर दिया है, उसमें समाज के दुख दैन्य, उसके स्वार्थों और अभिषापों का प्रतिकार किया है। उसमे एक विद्रोही की आत्मा रुदन करती है। उसका मूल उत्स पीड़ा में नहीं, समाज में दिनरात चलने वाले अन्यायों और अत्या-चारों में है।"

महादेवीजी की गद्य रचनाओं का विवरण इस प्रकार है—

रेखाचित्र साहित्य—अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएं और पथ के साथी

निबन्ध—क्षणदा

आलोचना—हिन्दी का विवेचनात्मक गद्य—यह महादेवी द्वारा लिखी गई काव्य संग्रहों की भूमिकाओं तथा कुछ आलोचनात्मक संग्रहों का संकलन है।

'चाँद' की उनकी नारी विषयक सम्पादकीय टिप्पणियां 'शृंखला की कड़ियाँ' में संग्रहीत है।

'स्मृति की रेखाएं' और 'अतीत के चलचित्र' के पात्र भारतीय जन-जीवन के कुरूप चिह्न हैं। जिन व्यक्तियों की समाज उपेक्षा कर देता है, महादेवी ने अपनी सहानुभूति से उनकी आन्तरिक भावनाओं का अध्ययन किया है कहीं–कहीं इनमें दबा हुआ विद्रोह भी मुखरित हो उठा है। मानव समस्याओं को इन रचनाओं में वाणी दी गई है।

'पथ के साथी' में लेखिका ने अपने सम–कालीन कवि बन्धुओं की जीवनधारा के चित्रण प्रस्तुत किए हैं। इन कवियों की निजी विशेषताओं को एक सजग पारखी की भांति, परखा है।

'क्षणदा' महादेवीजी के निबन्धों का संग्रह है। अपने निबन्धों का परिचय देते हुए इन्होंने लिखा है "क्षणदा में मेरे कुछ चिंतन के क्षण एकत्र है। इनमें न तर्क की प्रक्रिया है और न किसी जटिल समस्या को सुलझाने के निमित्त प्रस्तुत समाधान।" इससे स्पष्ट होता है कि इन निबन्धों में बौद्धिक व्यायाम नही, जीवन की जटिल समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न भी नहीं।

'हिन्दी का विवेचनात्मक गद्य' महादेवीजी के आलोचनात्मक निबन्धों का संग्रह है। डा० नगेन्द्र के अनुसार "महादेवीजी के साहित्य दर्शन का आधार है भारतीय आदर्शवाद, जो जीवन और जगत में एक सत्य की अखंड सत्ता मानता है।" इस संग्रह मे चिन्तन का प्राधान्य है।

'शृंखला की कड़ियाँ' में नारी-जीवन की समस्याओं पर विस्तार से विचार किया गया है। विशेष रूप से बाल–विधवा एवं वेश्याओं की समस्याओं को वाणी दी गई है। कितने सहानुभूति पूर्ण ढंग से वेश्या-जीवन पर विचार किया गया है "यदि स्त्री की ओर देखा जाय तो

निश्चय ही देखने वाला काँप उठेगा। उसके हृदय में प्यास है, परन्तु उसे भाग्य ने मृग मरीचिका में निर्वासित कर दिया है, उसे जीवन भर, आदि से अन्त तक सौन्दर्य की हाट लगानी पड़ी, अपने हृदय की समस्त कोमल भावनाओं को कुचल कर, आत्म समर्पण की सारी इच्छाओं का गला घोंट कर, रूप का क्रय–विक्रय करना पड़ा और परिणाम में उसके हाथ आया निराश-हताश एकाकी अन्त।" शृंखला की कड़ियां पृष्ठ १११।

नारी समाज का सबसे पीड़ित अंग है अतः महादेवी की विशेष अनुभूति नारी के प्रति रही है। यह कहना अनुचित होगा कि उन्हें नारी के प्रति पक्षपात पूर्ण स्नेह है और पुरुष के प्रति घृणा। शची रानी गुर्टू के शब्दों में "जहाँ कहीं उन्हें परवश असहाय विधवाएं तथा कुसुम कली सी कोमल अल्पव्यस्का पति–विहीना किन्तु किसी युवक की विकृत वासनाओं की शिकार, अवैध सन्तति से विभूषित कोई किशोरी बाला दीख पड़ी, वहीं उनके भीतर का तकाजा और भी अधिक दुर्दम्य कठोर और आत्म वेदना से आलोड़ित होकर प्रकट हुआ।"



महादेवी के व्यक्तित्व की विशेषताएं

पथ के साथी के आधार पर

किसी भी कलाकार की प्रत्येक कृति में उसके जीवन तथा व्यक्तित्व की छाया अवश्य रहती है। उसी झलक के आधार पर हमारी कल्पना उस कलाकार की एक मूर्ति गढ़ने लगती है। महादेवी वर्मा का काव्य करुणा से सिक्त है, ऐसा लगता है यह पीड़ा उनके जीवन की पूरक है, कवयित्री उसमें एक प्रकार का आनन्द सा अनुभव करती है। गद्य में उनकी यही आत्मपरक वेदना समष्टि परक बन गई है। यहाँ हमें यथार्थ जीवन के दर्शन होते हैं। जीवन का प्रत्येक पहलू उनके शब्दों में सजीव होकर सामने आया है। 'स्मृति की रेखाएं', 'अतीत के चलचित्र' 'श्रृंखला की कड़िया' आदि महादेवी की ऐसी रचनाएं है जिनमें पग-पग पर दीन तथा उपेक्षित वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट हुई है। करुणा के स्पर्श से उन्हें और भी सजीव बना दिया गया है। इनकी सहानुभूति का दायरा असीमित है, वह पूर्णतया क्रियात्मक है। अतः पद्य तथा गद्य दोनों में महादेवी की करुणा, वेदना, सहानुभूति आदि की प्रधानता रही, परन्तु काव्य में केवल अपनी वेदना को ही प्रधानता दी गई है और गद्य में वे समाज के उपेक्षितों के प्रति पग–पग पर सहानुभूति बाँटती चलती हैं।

"पथ के साथी' के सभी पात्र साहित्यिक वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं। सब लेखिका के समकालीन साहित्यिक बन्धु हैं। प्रत्येक कवि का एक अपना स्वतन्त्र जीवन दर्शन भी है। इन के स्वाभाविक चित्र अंकन करने के साथ–साथ पग–पग पर लेखिका ने अपने व्यक्तित्व का भी प्रत्यक्ष चित्रण किया है।

महादेवी को अल्पावस्था में ही विवाह सूत्र में बाँध दिया गया था जो कि जल्दी ही टूट भी गया। हो सकता है उनका अबोध शैशव जीवन कठोर वास्तविकता से टकराकर उनके मानस को बेचैन तथा नीरव बना गया हो। कुछ भी हो इनके काव्य में तो इसी मुख्य घटना का गहन रंग है। यहाँ तक कि गद्य में भी नारी वर्ग के प्रति विशेष सहानुभूति प्रदर्शित की गई है। महादेवीजी की माँ गहन आस्तिक स्वभाव की थीं तथा पिता एक दार्शनिक। दोनों का सबल प्रभाव इनके जीवन पर पड़ा है, जिससे एक ओर तो भावुक तथा करुणामयी कवयित्री को जन्म मिला तथा दूसरी ओर उनके मस्तिष्क में रहस्यवादी भावनाओं ने स्थान बनाया।

स्वभाव से ही महादेवीजी बहुत भावुक है। कृत्रिमता की अपेक्षा स्वाभाविकता और सरलता उन्हें प्रिय है। उनकी आँखों में करुणा है, आँसू हैं और साथ ही इस संसार को देने के लिये हँसी का भंडार जो कभी समाप्त नहीं होता। यह कहना अनुचित होगा कि यह हँसी उनके अन्तर से प्रस्फुटित नहीं होती, और अपनी पीड़ा को छिपाने के लिए ही वे उसे आवरण बनाती है। यदि ऐसा सत्य हो तो उसमें कृत्रिमता का समावेश हो जाए। परन्तु ऐसा नहीं है।

महादेवीजी के काव्य को पढ़ने से उनका जो करुणामय चित्र सामने आता है, यह हंसमुख व्यक्तित्व उस कल्पना से सर्वथा भिन्न है। यह आवश्यक भी नहीं कि कलाकार के साहित्य एवं व्यक्तिरूप में पूर्णरूपेण समानता ही हो, तथापि उसकी कुछ छाया तो उसमें रहती ही है। लेखिका ने इस सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं "साहित्य की सामान्य अनुभूति और साहित्यकार के व्यक्तिरूप में समानता पाना प्राय: कठिन हो जाता है। कभी-कभी तो ये दोनों इतने अनमिल ठहरते हैं कि साहित्य से उत्पन्न पूजाभाव व्यक्ति तक पहुंच कर अवज्ञा

बन जाता है या व्यक्ति परिचय से उत्पन्न आसक्ति झलक कर साहित्य को छबीला कर देती है।" पथ के साथी (प्रणाम से)

इनकी हँसी की मुख्य विशेषता है कि वह शान्त है। वह उनकी बात को और भी प्रभावशाली बनाने में सहायक है। वह ऐसी नहीं जैसे किसी ज्वालामुखी पर छिटकी चान्दनी। शिचन्द्र नागर के शब्दों में "उनके अधरों से फूटता हुआ अविरल मुक्त हास उस तरह है जैसे किसी शान्त भूधर के अंचल में कोई दूध से श्वेत पारदर्शी जल का निर्झर फूट रहा हो और उसको धरा की रज मलिन न कर पाई हो।" उनकी हँसी निर्मल है, निश्छल है और अकृत्रिम है। वे खुल कर भी हँसती हैं। कभी कभी तो बातें कम करती हैं, शान्त हँसी ही अधिक हँसती हैं। अपनी प्रिय सखी सुभद्राकुमारी चौहान के साथ वे जब भी हों तो प्रायः ऐसा ही होता था "हम दोनों जब साथ रहती थीं तब बात एक मिनिट और हँसी पाँच मिनिट का अनुपात रहता था। इसी से प्रायः किसी सभा समिति में जाने स पहले न हँसने का निश्चय करना पड़ता था।" पथ के साथी (पृष्ठ ५१)

महादेवी प्रकृति की प्रेमिका हैं। प्रकृति को देखने में इन्हें बहुत आनन्द मिलता है। जीवन मात्र से इन्हें अगाध स्नेह है। यहाँ तक कि पशु-पक्षी को भी ये दुःखी नहीं देख सकती। आम की गुठली, जो गर्मियों में जहाँ-तहाँ फैली हुई वर्षा के कारण जम जाती है-उसके लिए महादेवी सतर्क माली हैं, तथा सर्दी में ठिठुरते पिल्ले इनके अनुग्रह के पात्र हैं। मौन हिमानी और मुखर निर्झरों, निर्जन बन और कलरव भरे आकाश ने इन्हें सदैव आकर्षित किया है "हिमालय के प्रति मेरी आसक्ति जन्मजात है। उसके पर्वतीय अंचलों में भी मौन हिमानी और मुखर निर्झरों निर्जन बन और कलरव भरे आकाश वाला रामगढ़ मुझे विशेष रूप से आकर्षित करता है।" —पथ के साथी (पृष्ठ ५)

जीवन को जानने की जिज्ञासा महादेवी में अत्यन्त तीव्र है। कवि बनने की इच्छा भी इनमें बचपन से ही रही है। बाल्यावस्था से ही इनकी स्मृति बड़ी तीव्र रही है। कविता लिखने की इच्छा को पूरा करने के लिए तो वे अपनी गणित की कापी तक में कविता लिखा करती थी। उस युग में जबकि कविता की रचना अपराधों की सूची में थी और फिर गणित जैसे महत्वपूर्ण विषय के लिए निश्चित पृष्ठ पर तुक जोड़ना तो अक्षम्य अपराध था। इससे बढ़कर कागज का दुरुपयोग एवं विषय का निरादर और क्या हो सकता था? महादेवीजी अपनी तुक जोड़ने में इतनी मग्न रहती कि गुरूजी भी यही आशा करते—जैसे वे हर साँस में अंक जोड़ने की क्रिया बना रही हों। और फिर महादेवीजी अपनी जोड़ी हुई तुक को प्रत्येक विद्यार्थी से छुपाने का सफल प्रयास भी तो करती थीं। उन दिनों वे पाँचवी कक्षा की विद्यार्थिनी थीं। उनकी प्रिय सखी सुभद्राकुमारी चौहान ने जो कि सातवीं कक्षा में थी, एक दिन उनका यह अपराध पकड़ ही लिया। सुभद्राजी की जीवन-धारा से सम्बन्धित रेखाचित्र में उन्होंने स्वयं लिखा है—"एक सातवीं कक्षा की विद्यार्थिनी एक पांचवी कक्षा की विद्यार्थिनी से प्रश्न करती है, 'क्या तुम कविता लिखती हो?" दूसरी ने सिर हिला कर ऐसी अस्वीकृति दी जिसमें हां और नहीं तरल होकर एक हो गए थे। प्रश्न करने वाली ने इस स्वीकृति अस्वीकृति की सन्धि से खीझ कर कहा, 'तुम्हारी क्लास की लड़कियाँ तो कहती हैं कि तुम गणित की कापी तक में कविता लिखती हो। दिखाओ अपनी कापी' × × × नित्य व्यवहार में आने वाली गणित की कापी का छिपाना सम्भव नहीं था। अतः उसके साथ अंकों के बीच में अनधिकार सिकुड़ कर बैठ हुई तुकबन्दी अनायास पकड़ में आगई।" —पथ के साथी (पृष्ठ ३८)

यही नहीं महादेवीजी केवल लिखती हों सुभद्राकुमारी चौहान के शब्दों में "अच्छा तो लिखती हो।"

गणित में तो वैसे भी महादेवी की विशेष रुचि नहीं थी। वे तो बस कभी अपने बाहर बैठक की मेज पर बैठकर तथा कभी भीतर तख्त पर लेट कर अपने शोधकार्य में ही मग्न रहती थीं और अचानक मन में विचार आते ही सरकंडे की कलम की चौड़ी नोक से मोटे अक्षरों में उसे लिख डालतीं। परन्तु इसमें लेखिका को गणित के सवालों को निकालने से कम परिश्रम करना पड़ता हो—ऐसी बात नहीं। इसमें भी "कल्पना के किसी अलक्ष्य दल-दल में आकंठ ही नहीं, आशिखा मग्न किसी उक्ति की समस्या रूपी पूँछ पकड़ कर बाहर खींच लाने में परिश्रम कम नहीं करना पड़ता था। इस परिश्रम के नाप तोल का कोई साधन नहीं था।" —पथ के साथी (पृष्ठ १८)

महादेवी में अहंकार नाम की कोई वस्तु नहीं, लेकिन एक कलाकार में जो आत्माभिमान होना चाहिए, वही है। इनका गद्य परिवर्द्धित एवं परिष्कृत है और उसमें भी झलकती है जीवन की वास्तविकता जो स्थान-स्थान पर बिखरी पड़ी है। बात को जिस पात्र के मुँह से कहलवाती हैं, उसमें उसका व्यक्तित्व उभर कर सामने आ जाता है। 'पथ के साथी' के रेखाचित्रों के सभी पात्र यद्यपि साहित्यिक वर्ग के हैं और उन्हीं के अनुसार भाषा-शैली भी साहित्यिक ही रही है। कवि-पात्रों का चित्रण करने के फलस्वरूप सम्वादों में संस्कृत गर्भित पदावली को भी स्थान मिला है परन्तु ग्रामीण पात्रों के संवादों की अभिव्यक्ति उन्होंने ग्रामीण भाषा में ही की है। कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान के महादेवी के घर आने पर, भक्तिन कक्षा में पढ़ाती हुई महादेवी से कहती है—"ऊ सहोदरा विचरिअऊ तो इनका देखैं बरै आइ के अकेली सूने घर मा बैठी है। अउर इनका कितबियन से फुरसत नाहिन बा।"

अपने विद्यार्थी जीवन में महादेवी पढ़ाई में अच्छी रहीं, परीक्षा में भी अच्छा स्थान एवं छात्रवृत्ति मिलती रही, परन्तु पुस्तकों के साथ

बँधे रहना इन्हें कभी रुचिकर न लगा। पुस्तकों के प्रति इनका घोर विराग रहता था। "इन्टर तक पहुँच जाने पर भी परीक्षा के दिनों में मुझे पुस्तकों के साथ बाँध रखने के लिए आचार्या सुषालता को प्रलोभन देना पड़ता था कि तीन घण्टे बैठ कर पढ़ने के बाद आइसक्रीम मिलेगी। × × × और चार के अङ्क पर सुई के पहुँचते ही वे मुझे पुस्तकों के बंडल के साथ अपने दरवाजे पर पाती और तब आइसक्रीम पाने के उपरान्त मैं प्रायः उस बंडल को दूसरे दिन के लिए सुरक्षित रख आती।" —पथ के साथी (पृष्ठ ८७)

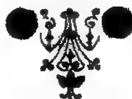
उदारता तथा स्नेहभाव से इनका व्यक्तित्व ओत-प्रोत है। यह स्नेहभाव विशेष रूप से महाकवि निराला की जीवनधारा से सम्बन्धित रेखाचित्र में उभरा है। उस महाकवि को—जिसने दिव्य वर्ण गंध मधु वाले गीत सुमनों से भारती की अर्चना भी की और बर्तन मांजने एवं पानी भरने जैसी कठिन श्रम साधना से उत्पन्न स्वेद बिन्दुओं से मिट्टी का श्रृंगार भी किया है। जिसे दुनियाँ ने ठुकराया है उसे महादेवी ने भगिनी जैसा स्नेह दिया है। उन्हीं की स्मृति में वे लिखती हैं "एक युग बीत जाने पर भी मेरी स्मृति से एक छटा भरी अश्रुमुखी सावनी पूर्णिमा की रेखाएं नहीं मिट सकी हैं। इन रेखाओं के उजले रंग न जाने किस व्यथा से गीले है कि अब तक सूख नहीं पाए, उड़ना तो दूर की बात है।" —पथ के साथी (पृष्ठ ५४)

महादेवी व्यवस्थित जीवन में विश्वास रखती हैं। तभी तो महाकवि निराला की निर्बन्ध उदारता को देख कर कहती हैं "उनके अस्त-व्यस्त जीवन को व्यवस्थित करने के असफल प्रयासों का स्मरण कर मुझे आज भी हँसी आ जाती है।" —पथ के साथी (पृष्ठ ५५)

इन रेखाचित्रों में उनके साहित्यक व्यक्तित्व ने रोचकता एवं नूतनता लाने के लिए व्यंग्य तथा हास्य के चुटीलेपन का सुन्दर सम्मिश्रण

किया है। इन रेखाचित्रों के अध्ययन से स्वयं लेखिका की कई स्वभावगत तथा मनोगत विशेषताएं हमारे सम्मुख उभर आई हैं। वे हंसमुख उदार, स्नेहमयी, प्रकृति प्रेमिका आदि कई रूपों में हमारे सामने आती हैं। इनका रेखाचित्र साहित्य शुष्क वर्णन मात्र ही नहीं है; यदि ऐसा होता तो उस रूप में वह हमें इतना प्रभावित न कर पातीं, जितना उन्होंने स्थान-स्थान पर अपने व्यक्तित्व की छाप डाल कर किया है। लेखिका की जीवन-धारा की मनोगत एवं स्वभावगत विशेषताओं के स्पर्श से ये रेखाचित्र और भी सजीव होगए हैं। उनमें आत्मीयता आगई। गहन से गहन भाव को भी सहज एवं सरल भाषा में समझाने का प्रयत्न किया है।

इन रेखाचित्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि महादेवी केवल कल्पना पथ की ही विहारिणी नहीं; यथार्थ पथ का इन्होंने अनुसरण किया है। गद्य में समाज को केन्द्र बना कर अनेकों स्वभाविक चित्रण इन्होंने प्रस्तुत किए हैं। केवल आत्म ही आत्म यहाँ नही है। काव्य में जहाँ वे सजल नेत्रों को लिए हमारे सम्मुख आती हैं, वहाँ गद्य में वे वास्तविकता के धरातल पर भी उतरी है। इस धरातल पर ही अपने पथ के साथियों की मार्मिक जीवन-धारा के रेखाचित्रों के बीच उनके अपने व्यक्तित्व को प्रणयन सम्भव हो सका है।



महादेवी की गद्य शैली :

पथ के साथी के आधार पर

रेखाचित्र में शैली का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। शब्दों द्वारा किसी वस्तु अथवा व्यक्ति का चित्र चित्रित करने के लिए शैली का प्रभाव-शाली होना आवश्यक है शुष्क वर्णन मात्र पाठक को प्रभावित करने में असमर्थ रहता है। महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों की सफलता एवं लोक-प्रियता का रहस्य भी उनकी सरल सुबोध एवं सहज गद्य शैली है जो उनके कवि हृदय की भावुकता और संवेदन शीलता ग्रहण कर अत्यन्त मनोरम बन गई है। हिन्दी गद्य साहित्य मे महादेवीजी का स्थान काव्य से कम महत्वपूर्ण नही है। इस पक्ष को सबल बनाने में भी उनका पूर्ण योगदान है। गद्य के आधुनिक रूप की अभिवृद्धि अनेक लेखकों ने की है परन्तु गद्य का परिष्कृत एवं परिवर्द्धित रूप इन्हीं की रचनाओं में उपलब्ध हो सका है।

रामचरण महेन्द्र के शब्दों में "हृदय की विशालता, भाव प्रसार की विलक्षण शक्ति, मर्मस्पर्शी स्वरूपों की उद्‌भावना, कल्पना शक्ति पर प्रभुत्व और शब्दों की नक्काशी का समुच्चय महादेवी की गद्य–शैली में ऐसा घुल–मिल गया है कि अनायास ही वे जीवन और समाज की विषम प्रहेलिकाओं पर सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि डाल देती है। उनके व्यक्ति और समाज के रेखाचित्र बड़े सजीव एवं रंगीन है। कला की तूलिका से उसमें रंग भरे गये हैं; कल्पना के परिधान से उन्हें सज्जित किया गया है।"

गद्य–शैली के रूप

महादेवीजी की गद्य शैली के सामान्यतः तीन रूप देखे जा सकते हैं–

१. चिन्तन प्रधान विवेचनात्मक—जिसमें मननशील साहित्य की उद्भावना है।

२. चित्रण प्रधान कलात्मक गद्य—जिसमें भावावेश के कारण काव्य का हल्का सा स्पर्श भी है।

३. गवेषनात्मक—इसमें प्रमुख रूप से नारी विषयक समस्याओं का विवेचन है।

चिन्तन प्रधान विवेचनात्मक गद्य का स्वरूप उनकी काव्य कृतियों की भूमिकाओं एवं उनके विवेचनात्मक गद्य संग्रह में देखा जा सकता है। इसमें साहित्य की विभिन्न समस्याओं एवं स्वरूपों आदि पर विवेचन किया गया है। इस गद्य के प्रत्येक वाक्य में चिन्तन की गहराई और साथ ही उसमें भावुकता का विचित्र मिश्रण होगया है। डा० नगेन्द्र के शब्दों में "महादेवीजी की आलोचना शैली चिन्तन की शैली है जिसमें विचार और अनुभूति का संयोग है। वह जैसे बौद्धिक तत्वों को पचा-पचा कर हमारे सम्मुख रखती हैं।"

उन्होंने साहित्य को चिरन्तन सत्य के रूप में स्वीकार किया है। दीपशिखा की भूमिका में उन्होंने लिखा है "सत्य की प्राप्ति के लिए काव्य और कलाएँ जिस सौन्दर्य का सहारा लेते हैं, वह जीवन की पूर्णतम अभिव्यक्ति पर आश्रित है केवल बाह्य सूत्र रेखा पर नहीं।"

चित्रण प्रधान कलात्मक गद्य-शैली का रूप उनके समस्त रेखाचित्र साहित्य में उपलब्ध होता है। इसमें काव्य तथा चित्रकला के समन्वित रूप के दर्शन होते हैं। कवि हृदय की भावुकता एवं संवेदन शीलता का स्पर्श इन रेखाचित्रों में स्थान-स्थान पर देखा जा सकता है, परन्तु लेखिका ने इस बात का भी विशेष ध्यान रखा है कि उनकी भाषा अधिक काव्यात्मक अस्पष्ट एवं बोझिल न बन जाए। 'अतीत के चलचित्र' 'स्मृति की रेखाएं' और 'पथ के साथी' इसी रूप के अन्तर्गत आते हैं।

'पथ के साथी' में कवीन्द्र--रवीन्द्र के बाह्य रूप का शब्दों द्वारा किया हुआ चित्रण दृष्टव्य है-- "मुख की सौम्यता को घेरे हुए वह रजत आलोक--मण्डल जैसा केश कलाप। मानो समय ने ज्ञान को अनुभव के उजले झीने तन्तु में कात कर उससे जीवन का मुकुट बना दिया हो। केशों की उज्ज्वलता के लिए दीप्त दर्पण जैसे माथे पर समानान्तर रह कर साथ चलने वाली रेखाएँ जैसे लक्ष्य--पथ पर हृदय के विश्राम चिह्न हों।" --पथ के साथी (पृष्ठ १--२)

तृतीय प्रकार (गवेषणात्मक) के गद्य में मुख्य रूप से नारी-विषयक एवं सामाजिक समस्याओं पर विचार किया गया है। इस प्रकार के गद्य में व्यंग्य तथा कथन की वक्रता स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होती है। 'चाँद' की उनकी नारी--विषयक सम्पादकीय टिप्पणियाँ जिन्हें संग्रहित कर 'शृङ्खला की कड़ियाँ' नाम दिया गया है--उसमें इस प्रकार के गद्य का स्वरूप उपलब्ध होता है। 'स्मृति की रेखाएँ' तथा 'अतीत के चलचित्र' में भी इस प्रकार की गद्य शैली के कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं "शताब्दियाँ आती--जाती रहीं, परन्तु स्त्री की स्थिति एक रसता में कोई परिवर्तन न हो सका। किसी भी स्मृतिकार ने उसके जीवन की विषमता पर ध्यान देने का अवकाश न पाया। किसी भी शास्त्रकार ने पुरुष से भिन्न करके उसकी समस्या को नहीं देखा।"

विशेष कर विधवाओं तथा वेश्याओं पर लिखते समय उनकी शैली में करुणा तथा कठोरता आई है।

पथ के साथी के आधार पर महादेवी की गद्य शैली की विशेषताएँ

जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है, महादेवी की संस्मरणात्मक शैली

सर्वत्र सहज-सुबोध परन्तु अत्यन्त मनोरम है। जैसा विषय वे ले लेती हैं, शैली, कल्पना एवं शब्द-चयन भी उसी के अनुसार करती हैं। वे कवि हैं, कलाकार हैं, यही कारण है कि उनके रेखाचित्रों, भावनाओं की अभिव्यक्ति में सूक्ष्मता का ध्यान रखा गया है। शब्दों द्वारा इनमें रंग रेखा की सृष्टि की गई है। महादेवी जी शब्दों की आत्मा को पहचानती हैं। वर्णनात्मक शैली में नूतनता तथा रोचकता लाने के लिए उसमें व्यंग्य एवं हास्य के चुटीलेपन और सूक्ति-शैली के गाम्भीर्य का सुन्दर मिश्रण किया है। सीधे-सादे विषय प्रस्तुत करते समय भी अपने भावुक हृदय के स्पर्श से उसमें एक अद्‌भुत माधुर्य तथा चमत्कार भर दिया है जो विषय को और भी प्रभावशाली बना देता है। यही उनकी गद्य-शैली की सफलता का रहस्य है।

'पथ के साथी' का वर्ण्य-विषय उनके अन्य दो रेखाचित्र संग्रहों ('अतीत के चलचित्र' तथा 'स्मृति की रेखाएँ') से भिन्न हैं। इन दोनों में सामाजिक समस्याओं की चर्चा प्रधान रूप से की गई है और 'पथ के साथी' में साहित्य जगत की, तथा उनके कवित्व गुण की छाया के कारण इन सभी रचनाओं की शैली की विशेषताएँ प्रायः एक जैसी हैं।

सर्व प्रथम प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन की शैली लीजिए। प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में सजीवता, सूक्ष्मता तथा काव्यात्मकता देखने योग्य है। सुमित्रानन्दन पन्त जी के जन्म स्थान कौसानी का मनोरम वर्णन देखिए "कौसानी मानो कूर्माचल का सुन्दर हृदय है। वहाँ हिम-श्रेणियाँ रजत वर्णमाला में लिखे सौन्दर्य के उज्ज्वल पृष्ठ के समान खुली रहती हैं। उस कत्यूर घाटी के बीच में खड़े होकर जब हम एक ओर हिम-दुकूलिनी चोटियों को और दूसरी ओर चीड़, देवदारुओं की हरीतिमा से अवगुण्ठिता कौसानी को देखते हैं, तब हमें ऐसा जान पड़ता है मानो हिम-शिखरों की उज्ज्वल रेखाओं ने कौसानी के सौन्दर्य की कथा लिखी

है और कौसानी ने अपने मरकत अंचल में हिमानी का छन्द आंका है।" — पथ के साथी (पृष्ठ ८९)

सुभद्राकुमारी चौहान के बाह्य–रूप के चित्रण का अनूठा ढंग देखिये "कुछ गोल मुख, चौड़ा माथा, सरल भृकुटियाँ, बड़ी और भाव-स्नात आँखें, छोटी सुडौल नासिका, हँसी को जमाकर गढ़े हुए से ओंठ और दृढ़ता सूचक ठुड्ढी ······ सब कुछ मिलाकर एक अत्यन्त निश्छल कोमल उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का पता देते थे।"

(पृष्ठ ४०–४१)

मैथिलीशरण गुप्त जी की जीवन–धारा से सम्बधित रेखाचित्र में से व्यंग्य शैली का एक उदाहरण देखिए "गुप्तजी के काव्य की समीक्षा करते–करते एक समीक्षक ने उनके सम्बन्ध में ऐसे आपत्ति जनक शब्दों का प्रयोग किया, जो मानहानि के अपराध के अन्तर्गत आ सकते है इससे भी सन्तुष्ट न होकर आलोचक ने गुप्तजी की सम्मति चाही। उन्होंने उत्तर में लिखा—'आपके निकट हमारे साहित्य और व्यक्तित्व का जो मूल्य है, उसके लिए हम कृतज्ञ हैं।" —(पृष्ठ ३७)

आलकारिक शैली का एक सुन्दर नमूना दृष्टव्य है "मधुमक्षिका जैसे कमल से लेकर भटकटैया तक और रसाल से लेकर आक तक सब मधुरतिक्त एकत्र करके उसे अपनी शक्ति से एक मधु बनाकर लौटाती है, बहुत कुछ वैसा ही आदान प्रदान सुभद्राजी का था।"—(पृष्ठ ४६)

और सूक्ति शैली का गाम्भीर्य "कार्य और कारण में चाहे जितना सापेक्ष सम्बन्ध हो किन्तु उनमें एकरूपता, नियम का अपवाद ही रहेगी। बिजली की तीखी उजली रेखा में मेघ का विस्तार नहीं देखा जाता और सौरभ की व्याप्ति में फूल का रूप दर्शन सम्भव नहीं होता।"

(पृष्ठ १)

साधारण बात को भी मर्मस्पर्शी ढंग से कहना महादेवीजी का स्वभाव है। यथा "हिरण्य-गर्भा धरती वाला हमारा देश भी कैसा विचित्र है जहाँ जीवन-शिल्प की वर्णमाला भी अज्ञात है वहाँ वह साधनों का हिमालय खड़ा कर देता है और जिसकी उँगलियों में सृजन स्वयं उतर कर पुकारता है उसे साधना-शून्य रेगिस्तान में निर्वासित कर आता है। निर्माण की इससे बड़ी विडम्बना क्या हो सकती है कि शिल्पी और उपकरणों के बीच में आग्नेय रेखा खींचकर कहा जाए कि कुछ नही बनता या सब कुछ बन चुका।" (पृष्ठ ८)

इनकी शैली की प्रमुख विशेषता है कथन की वक्रता। बात को ऐसे घुमा फिरा कर प्रस्तुत करती हैं कि आन्तरिक और बाह्य भाव व्यंजना का एक विचित्र सामजस्य लक्षित होता है "आले पर कपड़े की आधी जली बत्ती से भरा, पर तेल से खाली मिट्टी का दिया मानो अपने नाम की सार्थकता के लिए जल उठने का प्रयास कर रहा था। यदि उसके प्रकाश को स्वर मिल सकता तो वह निश्चय ही हमें, मिट्टी के तेल की दूकान पर लगी भीड़ में सबसे पीछे खडे पर सबसे बालिश्त भर ऊँचे गृह स्वामी की दीर्घ निष्फल कहानी सुना सकता। रसोई घर में दो तीन अधजली लकडियाँ, औंधी पड़ी बटलोई और खूँटी से लटकती हुई आटे की छोटी–सी गठरी मानो उपवास चिकित्सा के लाभों की व्याख्या कर रहे थे।" (पृष्ठ ५७)

संक्षेप में, रामचरण महेन्द्र के शब्दों मे "महादेवी जी ने भाव-पद्धति के निदर्शन का एक चमत्कारिक रूप प्रतिष्ठित किया है, लेखिका ने अपने विचार ऐसी भाषा में गूँथने का प्रयास किया है, जो सहज बोध-गम्य और सरस है। कवि हृदय की भावुकता और संवेदन शीलता भाषा में सजग है। हिन्दी गद्य–साहित्य में महादेवी का स्थान काव्य

से कम महत्वपूर्ण नहीं है। गद्य-साहित्य को भी उन्होंने स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदान की है।

रेखाचित्र लिखने की उनमें प्रबल शक्ति है। मधुर शब्द विन्यास, मनोरम चित्रशैली और इनके साथ काव्यत्व मिश्रण से उनकी शैली अत्यन्त प्रभावपूर्ण बन गई।



पथ के साथी में कथोपकथन

रेखाचित्र में लेखक पात्रों के व्यक्तित्व और उनकी जीवन घटनाओं को अपने दृष्टिकोण से व्यक्त करता है। परिणाम स्वरूप अपने पात्रों के विचारों तथा भावों की अभिव्यक्ति भी वह अधिकांशतः अपनी शैली में ही करता है इसीलिए प्रायः रेखा चित्र में संवादों को कम स्थान मिल पाता है, तथापि उनका पूर्णतया अभाव नही रहता। कुछ स्थलों पर पात्रों के मन के भावों को अपेक्षाकृत अधिक मुखर करने के लिए सवादों का आश्रय लेना पड़ता हैं।

महादेवी वर्मा ने 'पथ के साथी' में अपने समकालीन साहित्यिक बन्धुओं की जीवन-धारा का सवेदन चित्रण अपने दृष्टिकोण से किया है। अपने इन साहित्यिक पात्रो के भावों तथा विचारों को भी अधिकांशतः अपनी शैली मे व्यक्त किया हैं एवं कुछ स्थलों पर कथोपकथनों का आश्रय भी लिया है। ऐसे स्थल अपेक्षाकृत कम है, क्योंकि पात्र स्वय कम बोलता है, तथापि जितने सवाद है वे चरित्र की सूत्र रूप में व्याख्या करने से समर्थ हैं। गोपाल कृष्ण कौल के शब्दों में "लेखिका स्वय अपने पात्रो के विषय मे अधिक बोलती हैं, किन्तु उनके बोलने में ही चरित्र बोल उठता है × × × उनके वाक्य लम्बे होते हैं किन्तु शिथिल नही — उनमें भावनाओं की अभिव्यक्ति की प्रभाव पूर्ण चुस्ती है। इन रेखाचित्रों मे चरित्र की अतुल गहराई मे घुस कर मानवीय भावनाओं के मोती चुन-चुन कर सतह पर लाने का सफल प्रयास किया है। वे केवल रेखाओं में आकृति और मुद्रा को ही अंकित नहीं करती वरन् मन के सूक्ष्म भावो को भी उभार कर शब्द रेखा में बाँधने का प्रयत्न करती हैं"।

पात्र जितना बोलते हैं उनसे उनके चरित्र की सूक्ष्मतम मनो-

भावनाएं उभर कर सामने आगई हैं। उदाहरण स्वरूप महादेवीजी और सुभद्राकुमारी चौहान का यह वार्तालाप देखिए "एक सातवीं कक्षा की विद्यार्थिनी एक पाचवीं कक्षा की विद्धार्थिनी से प्रश्न करती है, क्या तुम कविता लिखती हो?' दूसरी ने सिर हिलाकर ऐसी अस्वीकृति दी जिसमें हां और नहीं तरल होकर एक हो गए थे। प्रश्न करने वाली ने इस स्वीकृति अस्वीकृति की सन्धि से खीझकर कहा 'तुम्हारी क्लास की लड़कियाँ तो कहती हैं कि तुम गणित की कापी तक में कविता लिखती हो। दिखाओ अपनी कापी।' और उत्तर की प्रतीक्षा में समय नष्ट न कर वह कविता लिखने की अपराधिनी को हाथ पकड़ कर खींचती हुई उसके कमरे के डेस्क के पास ले गई। × × × × मैंने होठ मीचकर न रोने का जो निश्चय किया तो वह न टूटा तो न टूटा। अन्त में मुझे शक्ति परीक्षा में उतीर्ण देखकर सुभद्राजी ने उत्फुल्ल भाव से कहा, 'अच्छा तो लिखती हो! भला सवाल हल करने में एक दो तीन जोड़ लेना कोई बड़ा काम है।' मेरी चोट अभी दुख रही थी परन्तु उनकी सहानुभूति और आत्मीय भाव का परिचय पाकर आँखें सजल हो आईं। 'तुमने सबसे क्यों बताया?' का सहास उत्तर था 'हमें भी तो यह सहना पड़ता है। अच्छा हुआ अब दो साथी हो गए।" (पृष्ठ ३८–३९)

कितनी स्वाभाविकता है दो बालिकाओं के सम्वाद में। बाल सुलभ विशेषताएं उभर आई हैं। कविता लिखना उस युग में अपराधों की सूची में था। इस अपराध को छिपाने के लिए एक पाँचवीं कक्षा की विद्यार्थिनी (महादेवी जी) का प्रयत्न और एक सातवीं कक्षा की विद्यार्थिनी द्वारा उस अपराध के पकड़े जाने पर उसके दण्ड का भय; सुभद्राजी की सहानुभूति तथा आत्मीयता—आदि भाव और इन सब के साथ स्वयं लेखिका की अल्पावस्था में कविता लिखने की रुचि—सब हमारे सम्मुख स्पष्ट हो जाते हैं।

व्यथा से परिपूर्ण कथोपकथन का एक उदाहरण दृष्टव्य है। 'निराला' जी का अभावग्रस्त जीवन ही मानो साकार होगया है। "उस दिन मैं बिना कुछ सोचे हुए ही भाई निराला जी से पूछ बैठी थी।' 'आपके किसी ने राखी नहीं बाँधी ?' अवश्य ही उस समय मेरे सामने उनकी बन्धन शून्य कलाई और पीले कच्चे सूत की ढेरों राखियाँ लेकर घूमने वाले यजमान-खोजियों का चित्र था। पर अपने प्रश्न के उत्तर ने मुझे क्षण भर के लिए चौंका दिया। "कौन बहिन हम ऐसे भुक्खड़ को भाई बनावेगी।" (पृष्ठ ५४)

इस प्रकार के कथोपकथनों के अतिरिक्त कुछ स्नेह से पूर्ण एवं हल्के फुल्के संवाद भी उपलब्ध होते हैं। यथा "एक बार भाई लक्ष्मणसिंह ने मुझसे सुभद्रा जी की स्नेह भरी शिकायत की, 'इन्होंने मुझसे कभी कुछ नही माँगा।' सुभद्रा जी ने अर्थ भरी हँसी में उत्तर दिया था, 'इन्होंने पहले ही दिन मुझसे कुछ माँगने का अधिकार माँग लिया था महादेवी ! यह ऐसे ही होशियार हैं, माँगती तो वचन-भङ्ग का दोष मेरे सर पड़ता, नहीं माँगा तो इनके अहङ्कार को ठेस लगती है।'

प्रसाद और महादेवी का एक हल्का फुल्का वार्तालाप दृष्टव्य है "मेरी हँसी देख कर या मुझे मेरे भारी भरकम नाम के विपरीत देख कर प्रसाद जी ने निश्छल हँसी के साथ कहा— 'आप तो महादेवी जी नही जान पड़तीं। मैंने भी वैसे ही प्रश्न में उत्तर दिया— 'आप ही कहाँ कवि प्रसाद लगते हैं जो चित्र में बौद्ध भिक्षु जैसे हैं।' (पृष्ठ ७४–७५)

सन् ४२ के आन्दोलन में पुलिस ने अकारण ही श्री मैथिली-शरण गुप्त जी को बन्दी गृह का अतिथि बनाया। जेल में कलेक्टर के साथ गुप्त जी का उग्रतापूर्ण कथोपकथन देखिए— "दुर्भाग्यवश कलेक्टर जेल की परिधि में अपने कवि बन्दी से प्रश्न कर बैठा, 'आप कुछ कहेंगे ?'

उत्तर देने वाले बन्दी की विनम्रता पत्नी शिक्षा से उबरा कर उग्रता में फूट पड़ी। 'आपका दिमाग खराब होगया है, आपसे क्या बातें करें। आप निर्दोषों को पकड़ते घूमते हैं। हमारा क्या हम तो लेखक ठहरे, यहाँ सब देखेंगे और इसके खिलाफ लिखेंगे।" (पृष्ठ ३२)

महादेवी के संवादों की प्रमुख विशेषता है पात्रानुकूल भाषा। 'पथ के साथी' में कवि पात्रों का चित्रण हुआ और भाषा भी उन्हीं के अनुकूल है। अर्थात् संस्कृत गर्भित पदावली की प्रधानता है। लेकिन जिन स्थलों पर ग्रामीण पात्रों के संवाद हैं वहाँ भाषा भी खड़ी बोली न होकर ग्रामीण ही है। कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान के महादेवी जी के घर आने पर भक्तिन महादेवी जी तक पर रोब जमाने लगती थी। क्लास में जाकर पढ़ाती हुई महादेवी जी से कहती है "ऊ सहोदरा बिचरिअऊ तो इनका देखै बरे आइ के अकेली सूने घर माँ बैठी है। अउर इनका कितबियन से फुरसत नाहिन आ।" (पृष्ठ ५०)

महादेवी जी का अपने पात्रों के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। रेखाचित्र में आए संवादों से भी पात्र-विशेष के व्यक्तित्व को उभारने में वे सफल रही है। कुछ कथोपकथनों से पात्र के मन के सूक्ष्म भाव हमारे सामने साकार हो जाते हैं। अतः ये कथोपकथन रेखाचित्रों को अधिक प्रभावशाली एवं सजीव बनाने में सहायक हुए हैं।



पथ के साथी में समकालीन कवि वर्ग एवं युग की परिस्थितियाँ

पथ के साथी में महादेवी वर्मा ने अपने पथ के साथियों की आर्थिक जीवन–धारा को युग के परिवेश में शब्द बद्ध किया है। तत्कालीन युग के कवि वर्ग की पारिवारिक, सामाजिक सभी परिस्थितियों का यथार्थ प्रतिपादन इन रेखाचित्रों में सफलता पूर्वक हुआ है। जिन महान कवियों ने साहित्य को अमूल्य रचनाएं प्रदान कीं उनको जीवन भर आर्थिक विषमताओं को झेलना पड़ा तथा बन्दी गृह का अतिथि बनना पड़ा, इस तथ्य का लेखिका ने सजीव चित्रण किया है। रचनाकार का जीवन अपने युग की विभिन्न परिस्थितियों से अनिवार्यतः प्रभावित होता है तथा यह प्रभाव उसकी कृतियों पर भी पड़ता है। महादेवी जी के शब्दों में "देश काल की सीमा में आबद्ध जीवन न इतना असंग होता है कि अपने परिवेश और परिवेशियों से उसका कोई संघर्ष न हो और न यह संघर्ष इतना तरल होता है कि उसके आघातों के चिन्ह शेष न रहें।" —पथ के साथी (दो शब्द से)

संक्षेप में इस कवि–वर्ग एवं उस युग की विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण इन रेखाचित्रों में इस प्रकार उपलब्ध होता है—

कवि वर्ग की आर्थिक परिस्थितियाँ

इन सभी कवियों का जीवन धन के अभाव की करुण कहानी रहा है। प्रसाद, निराला, सुमित्रानन्दन पन्त, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्रा-कुमारी चौहान आदि सभी को आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। प्रायः इन सबका जीवन ऋण ग्रस्त रहा है। गुप्त जी का जीवन इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। लेखिका के शब्दों में "ऋण का दुर्वह भार उन्हें रईसों के उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ। × × × जीवन के पिछले पहर में उन्हें ऋण से जो मुक्ति मिली है उस तक

पहुँचने के लिए उन्हें अर्थ-सङ्कट की अनेक दुर्गम घाटियाँ पार करनी पड़ीं हैं। उन दिनों की स्मृति मात्र से उनकी आँखों में जो पानी छलक आता है, उसी ने उनके स्वाभिमान पर शान चढ़ाई है। वे जिस सीमा तक साधनहीन के प्रति विनीत हैं उसी सीमा तक अर्थ-दम्भी के प्रति असहिष्णु।" (पृष्ठ २७)

बन्दी गृह में सम्पन्न परिवारों की सत्याग्राही स्त्रियों के लिए कितना ही मेवा मिष्ठान आता था, परन्तु एक बार सुभद्रा जी की भूख से रोती बालिका की भूख मिटाने के लिए कुछ न मिल सका। तब उस व्याकुल बालिका को बहलाने के लिए उन्होंने अरहर दलने वाली महिला कैदियों से थोड़ी दाल लेकर उसे तवे पर भून कर खिलाई।

महाकवि जयशंकर प्रसाद का जन्म एक सम्पन्न परिवार में हुआ परन्तु वह परिवार ऋण ग्रस्त था। क्षय रोग से पीड़ित होने पर अपने परिवार को ऋण मुक्त किया।

श्री सुमित्रानन्दन पन्त को आर्थिक दृष्टि से सम्पन्नता की ऊँची सीढ़ी से विपन्नता की अन्तिम सीढ़ी तक कई चढ़ाव-उतार देखने पड़े हैं। जिस अल्मोड़े में उनके कई मकान थे, वहीं पर किराए के छोटे से मकान में उन्हें रहना पड़ा।

इसके अतिरिक्त तत्कालीन समाज के आर्थिक वैषम्य का चित्रण भी किया गया है। कवीन्द्र रवीन्द्र को शान्ती निकेतन के लिए अर्थ संग्रह में यत्नशील देख कर उनका हृदय एक गम्भीर विषाद की अनुभूति से भर आया "हिरण्य गर्भा धरती वाला हमारा देश भी कैसा बिचित्र है। जहाँ जीवन-शिल्प की वर्णमाला भी अज्ञात है वहाँ वह साधनों का हिमालय खड़ा कर देता और जिसकी उँगलियों में सृजन स्वयं उतर कर पुकारता है उसे साधन शून्य रेगिस्तान में निर्वासित कर आता है। निर्माण की इससे बड़ी विडम्बना क्या हो सकतीहै कि शिल्पी और उपकरणों के बीच में आग्नेय रेखा खींच कर कहा जाय कि कुछ नहीं बनता या सब कुछ बन चुका।" (पृष्ठ ७-८)

तत्कालीन समाज में साहित्यकार वर्ग एवं समाज का सम्बन्ध

इस रेखाचित्र संग्रह में कुछ स्थलों पर इस बात का संकेत भी मिल जाता है उस समय साहित्यकारों तथा समाज का आपस में कैसा सम्बन्ध था। यथा उस युग में कविता लिखना अपराधों की सूची में था। लेखिका के शब्दों में "कोई तुक जोड़ता है, यह सुन कर ही सुनने वालों के मुख की रेखाएँ इस प्रकार वक्रकुंचित हो जातीं थीं मानो उन्हें कोई कटुतिक्त पेय पीना पड़ा हो।" (पृष्ठ ३९)

यह तो सत्य है कि आज जिस सीमा तक साहित्य जगत में ईर्षा-द्वेष है, उस सीमा तक तो तब नहीं था, परन्तु एक दूसरे के साहित्य--चरित्र--स्वभाव सम्बन्धी निन्दा तो उस युग में भी लोक--प्रिय थी। साहित्यिक सम्मेलनों में स्नेह तथा सौहार्द के स्थान पर ईर्षा--द्वेष ही बढ़ता था। इसीलिए मैथिलीशरण गुप्त तो इन सभा--सम्मेलनों की अध्यक्षता से भी घबराते थे क्योंकि "उनका अवचेतन मन जानता है कि यह सब आयोजन एक ही देवता के अनेक विग्रह हैं। इन सभी कामों से व्यक्ति का अहं इस सीमा तक स्फीत हो जाता है कि उस अहंकार की रक्षा के लिए दैन्य को स्वीकार करना भी स्वाभाविक हो जाता है।" (पृष्ठ २९)

"साहित्य कार संसद की कल्पना भी एक मनोव्यथा का परिणाम थी। ऐसी संस्था का अभाव था जो लेखकों के हित की चिन्ता कर सके और अवसर पड़ने पर उन्हें पारिवारिक संरक्षण दे सके।"

इन सबसे तो ग्राम की रस--पूर्ण गोष्ठियों को उन्होंने सफल माना है जो आडम्बर हीन होती हैं।

इसके अतिरिक्त समाज में बच्चों के विकास के लिए जिस उन्मुक्त एवं मनोवैज्ञानिक वातावरण की अपेक्षा रहती है, उसका अभाव खटकता था। यहाँ तक कि माता पिता बच्चों को शिष्ट बनाने के प्रयत्न

में स्वयं अशिष्टता की सीमा तक पहुँच जाते थे। सुभद्राकुमारी चौहान ने इसका विरोध कर अपने बच्चों को मुक्त वातावरण दिया और जिस कन्या दान प्रथा का सभी चुप-चाप पालन करते आ रहे थे उसी के विरुद्ध उन्होंने आवाज उठाई 'मैं कन्या दान नहीं करूँगी। क्या मनुष्य मनुष्य को दान करने का अधिकारी है ? क्या विवाह के उपरान्त मेरी बेटी मेरी नहीं रहेगी ?'

राजनीतिक वातावरण

महादेवी वर्मा के अनुसार उच्च वर्ग और हरिजनों के बीच जो वैषम्य था उसे गान्धी जी मृत्यु पर्यन्त भी न मिटा सके। इसका परिचय बापू के अस्थि विसर्जन के दिन प्राप्त हुआ जब कि सुभद्राकुमारी के साथ कई सौ हरिजन महिलाओं को पैदल नर्मदा किनारे पहुँचने पर भी अस्थि प्रवाह के उपरान्त संयोजित सभा के घेरे में स्थान नहीं दिया गया। सुभद्रा जी इस अन्याय के प्रति कैसे क्षमा शील हो सकती थीं। वे स्वयम् भी सभा में तभी सम्मिलित हुईं जब उन हरिजनों को भी उनका अधिकार दिला सकी।

अँग्रेजों द्वारा देश भक्तों को अकारण ही बन्दीगृह का अतिथि बनाया जाता था। सुभद्राकुमारी चौहान का जीवन इसका प्रमाण है। वे राजनीतिक जीवन मे विद्रोहिणी रही। विवाह के उपरान्त ही घर और कारागार के बीच जीवन का जो क्रम आरम्भ हुआ तो वह अन्त तक चलता ही रहा। सन् ४२ के आन्दोलन में गुप्त जी को भी बिना किसी कारण कारावास-दण्ड दिया गया। जिन कवियों ने अपनी महान् रचनाएँ साहित्य को प्रदान कीं उन्होंने जीवन में किस प्रकार विषमताएँ झेली इसका जो चित्रण महादेवी जी ने किया है वह प्रशंसनीय है। कवयित्री होने के नाते यह चित्रण और भी हृदयग्राही बन गया है।

—:o:—

'पथ के साथी' में चरित्र-चित्रण

रेखाचित्रों में चरित्र-चित्रण का तत्त्व प्रधान रहता है और अन्य तत्त्व इसी के विकास में सहायक रहते हैं। रेखाचित्रकार अपने अनुभवों के आधार पर किसी व्यक्ति अथवा वस्तु की रूप-रेखा एवं व्यक्तित्व स्पष्ट करने का प्रयास करता है। उसकी सफलता इसी में है कि चित्रित व्यक्ति अथवा वस्तु की चारित्रिक झाँकी सी हमारे सामने साकार हो जाए।

'पथ के साथी' में लेखिका ने अपने समकालीन कवि-पात्रों के रेखा चित्र एक सजग पारखी की भाँति खींचे हैं। यह कहना उचित होगा कि उन्होंने प्रत्येक कवि की निजी विशेषताओं को उभार कर पाठक के सम्मुख रख दिया है। उन्होंने केवल बाह्य रेखाओं से अपने पात्रों की आकृति और मुद्रा को ही अङ्कित नहीं किया अपितु उनके चरित्र की गहराई में घुस कर मन के सूक्ष्म भावों को शब्द बद्ध करने का प्रयत्न किया है। उनके कवि हृदय ने इनमें भावना तथा कल्पना के रङ्ग भरे हैं जिनसे इन पात्रों में एक विचित्र आकर्षण एवं सजीवता आगई है।

साहित्यिक वर्ग से सम्बन्धित इन पात्रों में सहानुभूति, स्वाभिमान, उदारता, कर्तव्य निष्ठा, गम्भीरता आदि गुण सहज ही में उपलब्ध हो जाते हैं। स्वयं शिक्षित होते हुए भी इनमें अशिक्षितों तथा ग्रामीणों के प्रति आत्मीयता का भाव मिलता है। ये स्वयं अभावग्रस्त रहे परन्तु दूसरे की सहायता करना इनका प्रथम कर्तव्य रहा। महाकवि निराला की दानशीलता इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। एक बार इन्होंने कहीं से तीन सौ रुपए पा जाने पर महादेवी जी से खर्च का बजट बनवाया। परन्तु दूसरे दिन सुबह ही वे पहुँचे "पचास रुपए चाहिए ... किसी विद्यार्थी का परीक्षा शुल्क जमा करना है, अन्यथा वह परीक्षा में नहीं बैठ सकेगा। सन्ध्या होते-होते किसी साहित्यिक मित्र को साठ देने की

आवश्यकता पड़ गई। दूसरे दिन लखनऊ के किसी ताँगे वाले की माँ को चालीस मनीआर्डर करना पड़ा। दोपहर को किसी दिवंगत मित्र की भतीजी के विवाह के लिए सौ देना अनिवार्य होगया। सारांश यह कि तीसरे दिन उनका जमा किया हुआ रुपया समाप्त होगया।"

—पथ के साथी (पृष्ठ ५६)

इतना ही नहीं बड़े प्रयत्न से बनवाई रजाई कोट जैसी नित्य व्यवहार की वस्तुएँ भी प्रायः अन्य का कष्ट दूर करने के लिए अन्तर्धान हो जातीं।

अपने सम्बन्ध में अस्त-व्यस्त निराला जी अतिथि-सेवा में बहुत सतर्क थे। भोजन बनाने से लेकर जूँठे बर्तन साफ करने तक का कार्य वे अपने अतिथि देवता के लिए प्रसन्नता से करते थे "जो अपना घर समझ कर आए हैं उनसे यह कैसे कहा जावे कि उन्हें भोजन के लिए दूसरे के घर जाना होगा।" (पृष्ठ ५८)

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की स्पष्टवादिता, स्वाभिमानता एवं सादगी आदि विशेषताएँ देखने योग्य हैं। उन्हें धनाभाव सहन करना पड़ा परन्तु उन्होंने इस सङ्कट को पार कर अपने स्वाभिमान की शान कम नहीं होने दी। उनके विचारों से कोई सहमत हो अथवा असहमत उनके सम्बन्ध में कभी भ्रम वा उलझन में नहीं पड़ सकते। जो उनकी वाणी में था वही उनके हृदय में रहता था। उनमें ऐसी स्पष्टवादिता थी जो लौकिक सफलता से अनमेल रहती है। "वे गोपन शास्त्र की वर्णमाला भी नहीं जानते जिसकी आज के युग में पग-पग पर आवश्यकता पड़ती है।" (पृष्ठ २९)

जीवन-पर्यन्त संघर्ष करने पर भी ये कभी दीन हीन नहीं बने, विचलित नहीं हुए। सन् ४२ के आन्दोलन में उन्हें अकारण ही बन्दीगृह का अतिथि बनाया गया। वहाँ जेल के कलेक्टर ने उनसे पूछा 'आप कुछ कहेंगे' तो उनका उग्रता से पूर्ण उत्तर था "आपका दिमाग खराब

होगया है, आपसे क्या बातें करें। आप निर्दोषों को पकड़ते घूमते हैं। हमारा क्या, हम तो लेखक ठहरे, यहाँ सब देखेंगे और इसके खिलाफ लिखेंगे।" (पृष्ठ ३२)

भावना, ज्ञान और कर्म के सामंजस्य से युक्त कवीन्द्र रवीन्द्र के व्यक्तित्व में वात्सल्य एवं हँसी का अद्‌भुत सम्मिश्रण उपलब्ध होता है "सम्बलहीन मानव से लेकर सड़क में गिर कर टाँग तोड़ लेने वाले भूटिया कुत्ते तक के लिए उनकी चिन्ता स्वाभाविक और सहायता सुलभ रही है।"

कवीन्द्र रवीन्द्र ऐसे महान् दृष्टा साहित्यकार हैं जिनकी हर उपलब्धि भी महान् है। वे "क्षुद्र लगने वाले मानव की महामानवता के वैतालिक हैं। × × × मनुष्य की स्वभावगत महानता की उन्होंने केवल कल्पना नहीं की थी, वरन् अथक अन्वेषण करके उसे अपने साहित्य से सिद्ध भी किया है। इसी से जन साधारण की चर्चा में वे साहस पूर्वक घोषणा करते हैं। 'मुझे जन तो बहुत मिले पर साधारण कोई नहीं मिला।' "

परिवार के प्रति इन कवियों का जो कर्तव्य था, उसे इन्होंने निभाया है। इनके जीवन में अनेकों कठिनाइयाँ आईं परन्तु इन्होंने उन कठिनाइयों से संघर्ष किया। यथा प्रसाद ने क्षय ग्रस्त होते हुए भी अपने ऋणग्रस्त परिवार को ऋण से मुक्त किया और इसके साथ ही इनकी व्यवहार बुद्धि भी कुछ कम असाधारण नहीं है। इनकी साहित्यिक प्रतिभा ने जहाँ साहित्य को अनेक अमूल्य ग्रन्थ प्रदान किए वहाँ इनकी व्यवहार बुद्धि ने धूमिल नए युग के काव्य और विचार को आलोक की पृष्ठभूमि देने के लिए ही इन्दु, जागरण जैसे पत्रों की कल्पना को मूर्त रूप दिया।

गम्भीरता श्री सियारामशरण गुप्त के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता है। वे ऐसे पथिक हैं जिनका ध्यान पथ के काँटों और पैर की चोटों की ओर न जाकर गन्तव्य में केन्द्रित रहे। अपने जीवन के लक्ष्य को निकट

लाने के लिए ही उन्होंने अपनी साँसों का उपयोग किया।

इन सभी कवि पात्रों की मुख्य विशेषता है हँसमुख व्यक्तित्व। ये सभी मधुर भाषी एवं विनोदी हैं। गुप्त जी की हँसी का वर्णन महादेवी जी के शब्दों में "उनकी दृष्टि और हँसी उन्हें किसी के निकट अपरिचित नहीं रहने देती। कभी-कभी तो उनका देखना और हँसना इस तरह साथ चलता है कि दृष्टि हँसती-सी लगती है और हँसी से दृष्टि का आलोक बरसता जान पड़ता है।" (पृष्ठ २१)

वात्सल्यमयी सुभद्राकुमारी चौहान की ममता, स्नेह एवं आत्मीयता से पूर्ण हँसी निश्चय ही असाधारण है। 'मैंने हँसना सीखा है, मैं नहीं जानती रोना' कहने वाली की हँसी देख कर उनके सामने बात करने वाले भी बात करने से अधिक हँसने को महत्व देने लगते थे। महादेवी जी के शब्दों में 'माता की गोद में दूध पीता बालक जब कचानक हँस पड़ता है तब उसकी दूध से धुली हँसी में जैसी निश्चिन्त तृप्ति और सरल विश्वास रहता है बहुत कुछ वैसा ही भाव सुभद्रा जी की हँसी में मिलता था।"

सुमित्रानन्दन पन्त जी की हँसी का इन्द्र धनुष श्रम-बिन्दुओं के दोनों छोरों को जोड़ता हुआ उदय हुआ है। बाह्य रूप से निरन्तर दृढ़ता का परिचय देने वाले "कवीन्द्र रवीन्द्र के अधरों से जब हँसी का अजस्त्र प्रवाह बह चलता था तब अभ्यागत की स्थिति वैसी ही होजाती थी जैसी अडिग और रन्ध्रशील शिला से फूट निकलने वाले निर्भर के सामने सहज है।" (पृष्ठ ३)

इन कवियों ने काव्य में ही सफलता प्राप्त नहीं की वरन् इन्होंने अपने जीवन-संघर्ष का भी सफलता पूर्वक सामना किया है। इन सबका अपना स्वतन्त्र जीवन दर्शन है। इसके अतिरिक्त साहित्य-जगत मे एक दूसरे के प्रति ईर्षा-द्वेष का जो दुर्गुण मिलता है, इनमें वह खोज लेना असम्भव है। इन सभी प त्रों में परस्पर जो आत्मीयता का भाव है, वह इनकी निजी विशेषता है।

—:o:—

पथ के साथी रेखाचित्रों की दृष्टि से

किसी व्यक्ति के संस्मरणों का कलात्मक संगठन रेखाचित्र कहलाता है। जिस प्रकार चित्रकार अपनी तूलिका से किसी व्यक्ति का रेखाचित्र बनाता है, उसी प्रकार लेखक भी शब्दों द्वारा किसी व्यक्ति का इस प्रकार चित्र अङ्कित करता है कि वह सजीव रूप से आँखों के सम्मुख आ जाता है। कल्पना के स्पर्श से उसे भावनात्मक अभिव्यक्ति देकर रेखाचित्रकार उसे अधिक मुखरित कर देता है। यथार्थ पृष्ठ भूमि पर चारित्रिक उभार ही उसका प्रमुख उद्देश्य होता है।

महादेवी वर्मा की चित्रकला में विशेष रुचि है। कवि होने के साथ–साथ वह चित्रकार भी हैं। गोपाल कृष्ण कौल के शब्दों में "दीप शिखा काव्य–संग्रह में महादेवी जी के, चित्रों के गीत और गीतो के चित्र है। उसमें उन्होंने रेखा और शब्द दोनों में ही कविता को आकार प्रदान किया हैं।" शब्दों की तूलिका से उन्होंने जो चित्र अङ्कित किए है, उनमें उन्होंने स्वयं भी एक पात्र के रूप में अपने अनुभवों को मूर्त किया है। 'अतीत के चलचित्र' की भूमिका में उन्होंने इस सम्बन्ध मे लिखा है "इन स्मृति चित्रों में मेरा जीवन भी आगया है। यह स्वाभाविक भी था। अँधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुँधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते हैं, उसके बाहर तो वे अनन्त अन्धकार के अँश हैं। मेरे जीवन की परिधि के भीतर खड़े होकर चरित्र जैसा परिचय दे जाते हैं, वह बाहर रूपान्तरित हो जाएगा।"

'स्मृति की रेखाएँ', 'अतीत के चलचित्र' तथा 'पथ के साथी' महादेवी जी के प्रमुख रेखाचित्र संग्रह हैं। यद्यपि अतीत के चल चित्र और 'स्मृति की रेखाएँ' में रेखाचित्रों के अतिरिक्त संस्मरण भी हैं, तथापि इनमें जो रेखाचित्र हैं, वे हिन्दी साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

कथानक की गौणता का गुण प्रायः रेखाचित्र की सफलता का रहस्य है। 'पथ के साथी' में अन्य दोनों संग्रहों की अपेक्षा यह गुण पूर्णतया उपलब्ध होता है। कहानी अथवा संस्मरण का क्रम इन रेखा-चित्रों में नहीं होता। लेखिका ने अपने परिचित साहित्यिक बन्धुओं की जीवन-धारा के स्मृति चित्रों को मार्मिक रूप से इस रेखाचित्र-संग्रह में वर्णित किया है। इन सबसे लेखिका का सम्पर्क जिन परिस्थितियों में हुआ वे अलग-अलग हैं, तथापि इन सभी कवियों की जीवन-धारा के चित्रण में जो एक प्रकार की श्रद्धा एवं आत्मीयता लक्षित होती है, उसकी मात्रा में भिन्नता नहीं आने पाई। संक्षेप में इन रेखाचित्रों को रेखाचित्र की निजी विशेषताओं के आधार पर इस प्रकार देखा जा सकता है:—

प्रथमतः रेखाचित्र के सभी पात्रों एवं वातावरण का वर्णन अधि-कांशतः यथार्थ की पृष्ठ भूमि पर होता है, कल्पना पर कम। कल्पना का तत्व वास्तविकता को ठेस पहुंचाता हुआ नहीं होता। पात्रों के बाह्य रूप-चित्रण के साथ-साथ उनकी आन्तरिक भावनाओं का भी सूक्ष्म वर्णन किया जाता है जिससे वे एक सजीव चित्र के रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत हो। महादेवी वर्मा के 'पथ के साथी' के रेखाचित्रों में तो यह गुण तो कूट-कूट कर भरा हुआ है। इस रेखाचित्र-संग्रह में छह कवियों के जीवन-चित्रण हैं। आरम्भ में कवीन्द्र रवीन्द्र की जीवन-धारा का चित्रण है जिसको 'प्रणाम' शीर्षक से प्रस्तुत किया गया है। इन सभी साहित्यिक पात्रों का वर्णन महादेवी जी ने इस प्रकार किया है कि उन्हें पढ़कर उनका एक सजीव चित्र सा आंखों के सामने झूलने लगता है।" चित्रात्मकता तो इन रेखाचित्रों का एक प्रमुख अंग बनी हुई है। उदाहरणतः सुभद्राकुमारी चौहान के बाह्य रूप का चित्रण देखिए "मझोले कद तथा उस समय की कृश देहयष्टि में ऐसा कुछ उग्र या रौद्र नहीं था

जिसकी हम वीरगीतों की कवयित्री में कल्पना करते हैं। कुछ गोल-गोल मुख, चौड़ा माथा, सरल भृकुटियाँ, बड़ी और भावस्नात आँखें छोटी सुडौल नासिका, हँसी को जमाकर गढ़े हुए से ओंठ और दृढ़ता सूचक ठुड्डी .... सब कुछ मिला कर एक अत्यन्त निश्छल कोमल उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का ही पता देते थे।"

—पथ के साथी (पृष्ठ ४१)

और कवीन्द्र रवीन्द्र के बाह्य आकार के वर्णन की सजीवता भी दृष्टव्य है "मुख की सौम्यता को घेरे हुए वह रजत आलोक-मंडल जैसा केश-कलाप मानो समय ने ज्ञान को अनुभव के उजले झीने तन्तु में कात कर उससे जीवन का मुकुट बना दिया हो। केशों की उज्ज्वलता के लिए दीप्त दर्पण जैसे माथे पर समानान्तर रह कर चलने वाली रेखाएं जैसे लक्ष्य पथ पर हृदय के विश्राम चिह्न हों।" (पृष्ठ १-२)

इसके साथ ही पात्रों के मन की भावनाओं का सूक्ष्म वर्णन करने का गुण महादेवीजी में विशेष रूप से है। उनकी दृष्टि पैनी है और अनुभूति सत्य के निकट है, जिससे अनेक पात्रों के शरीर का ढाँचा ही नहीं, उनके मन आत्मा की विशेषताओं का नक्शा भी प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक कवि की निजी विशेषताओं को उन्होंने ढूँढ निकाला है। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त की स्पष्टवादिता का वर्णन इस प्रकार किया गया है "वे गोपन शास्त्र की वर्णमाला भी नहीं जानते, जिसकी आज के युग में पग-पग पर आवश्यकता पड़ती है।" (पृष्ठ २९)

महाकवि निराला की अतिथि सेवा की सतर्कता का वर्णन देखिए "जो अपना घर समझ कर आए हैं, उनसे यह कैसे कहा जावे कि उन्हें भोजन के लिए दूसरे के घर जाना होगा।"

अतः केवल आकृति और मुद्रा का ही नहीं, अपने पात्रों की निजी विशेषताओं के मोतियों को भी अपने शब्दों के गुम्फन द्वारा सतह पर लाने का सफल प्रयत्न किया है। सुन्दर शब्द संगठन की यह विशेषता उनके प्रत्येक रेखाचित्र में दृष्टिगोचर होती है।

रेखाचित्रों में तत्कालीन समाज का चित्रण होना चाहिए। महादेवीजी का यह चित्रण अत्यन्त सजीव एवं स्वाभाविक बन पड़ा है। सामाजिक वैषम्य के प्रति कही गई उक्तियों में महादेवी का हृदय एक गम्भीर विषाद की अनुभूति से भर आया है "हिरण्यगर्भा-धरती वाला हमारा देश भी कैसा विचित्र है। जहाँ जीवन शिल्प की वर्णमाला भी अज्ञात है वहाँ वह साधनों का हिमालय खड़ा कर देता है और जिसकी उँगलियों में सृजन स्वयं उतर कर पुकारता है उसे साधन-शून्य रेगिस्तान में निर्वासित कर आता है। निर्माण की इससे बड़ी विडम्बना क्या हो सकती है कि शिल्पी और उपकरणों के बीच में आग्नेय रेखा खींच कर कहा जाय कि कुछ नहीं बनता या सब कुछ बन चुका।" (पृष्ठ७-८)

रेखा चित्रकार की सहानुभूति सभी पात्रों के प्रति एक-समान होनी चाहिए। यह विशेषता भी इन रेखाचित्रों में उपलब्ध हो जाती है। जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है, इन कवियों के साथ लेखिका के सम्पर्क की परिस्थितियां भिन्न हैं तथापि उनके प्रति इनकी जो श्रद्धा, सहानुभूति एवं आत्मीयता है, उसमें अन्तर नही आने पाया है। लेखिका ने इनके चरित्रांकन के साथ ही इनकी समस्याओं को भी वाणी दी है, और अपने को भी उनसे पृथक नहीं रख पाई है।

रेखाचित्र की सफलता लेखक की शैली पर भी आधारित है। वर्णन शैली में नवीनता, व्यंग्य, हास्य, एवं पात्रों के वास्तविक तथा स्वाभाविक वार्तालापों से रेखाचित्र अधिक प्रभावशाली बन जाते हैं। महादेवी जी ने अपने रेखाचित्रों में अपने भावुक हृदय के स्पर्श से एक विचित्र माधुर्य भर दिया है। उनकी शैली में हास्य, व्यंग्य के चुटीलेपन एवं सूक्ति शैली की गम्भीरता का सुन्दर मिश्रण उपलब्ध होता है। उनकी व्यंग्य शैली का एक उदाहरण देखिये "गुप्तजी के काव्य की समीक्षा करते-करते एक समीक्षक ने इनके सम्बन्ध में ऐसे आपत्तिजनक

शब्दों का प्रयोग किया, जो मानहानि के अपराध के अन्तर्गत आ सकते हैं। इससे भी सन्तुष्ट न होकर आलोचक ने गुप्तजी की सम्मति चाही। उन्होंने उत्तर लिखा— आपके निकट हमारे साहित्य और व्यक्तित्व का जो मूल्य है, उसके लिये हम कृतज्ञ हैं।" (पृष्ठ २७)

संक्षिप्तता रेखाचित्र की अन्य विशेषता है। अत्यधिक विस्तार से उनका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। महादेवी जी के कुछ रेखाचित्र यद्यपि कुछ लम्बे हो गए हैं, तथापि उनका सौन्दर्य नष्ट नहीं होने पाया। वे नीरस नहीं होने पाए उनकी रोचकता ज्यों की त्यों बनी हुई है।

इसके अतिरिक्त देश प्रेम, परोपकार, कर्तव्य-निष्ठा, गम्भीरता आदि सभी गुण इन जीवन-चित्रणों में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाते हैं। करुणा, हास्य प्रेम आदि प्रमुख मानवीय भाव इन शब्द चित्रों को पढ़ने से जाग उठते हैं। लेखिका की सूक्ष्म दृष्टि एवं परिष्कृत भाषा शैली इन भावों को उभारने में मुख्य रूप से सहायक रही हैं। यही इनकी सफलता का रहस्य है। हिन्दी साहित्य में इस प्रकार के रेखाचित्र अंकित करने की क्षमता बहुत कम लेखकों में है। कहीं-कहीं तो महादेवीजी के रेखाचित्र कविता से भी अधिक हृदय ग्राही बन गए हैं। अन्त में डा० सुरेशचन्द्र गुप्त के शब्दों मे "प्रस्तुत संग्रह की सर्व प्रमुख विशेषता यह है कि रचना शिल्प की दृष्टि से जहाँ महादेवी के अन्य रेखाचित्रों में कथातत्त्व की अतिशयता के कारण संस्मरण अथवा कहानी का भ्रम होता है वहाँ इन रेखाचित्रों में इस दोष का सर्वथा अभाव है। यही नहीं, इनमें महादेवीजी ने अपने व्यक्तित्व का प्रत्यक्ष चित्रण भी स्थान-स्थान पर किया है, जो रेखाचित्रों में ही सम्भव है। इनमें कहानी की सूत्रबद्धता का भी अभाव है। ये तो बिखरे हुए स्मृति चित्र हैं जिनको एक साथ समेट कर रेखाचित्रों की संज्ञा दे दी गई है। वस्तुतः रेखाचित्रों की सफलता कथानक की गौणता में है; और इस कसौटी पर यह पूर्ण उतरते हैं।"

पथ के साथी में अन्तः प्रकृति एवं बाह्य प्रकृति का सामंजस्य

महादेवी वर्मा का काव्य आरम्भ से लेकर अन्त तक आत्मपरक रहा है। उसमें पीड़ा करुणा एवं वेदना ही समग्र रूप से आच्छादित है और इस वेदना को उन्होंने अपना बनाकर प्रस्तुत किया है। वेदना को उन्होंने मधुर भाव के रूप में स्वीकार किया है, वे उससे अलग नहीं होना चाहतीं। वह मानो उनके जीवन की सक्रिय पूरक है। रश्मि की भूमिका में उन्होंने स्वयं लिखा है "सुख और दुख के धूप छाँही डोरों से बने हुए जीवन में मुझे केवल दुख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है। × × × × संसार जिसे दुख और अभाव के नाम से जानता है, वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है। परन्तु उस पर दुख की छाया नहीं पड़ सकी। कदाचित उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी प्रिय लगने लगी है।"

पद्य की यही व्यक्ति प्रधान व अन्तर्मुखी प्रकृति गद्य में समष्टि प्रधान और बहिर्मुखी हो गई है। इनके काव्य को पढ़ने के उपरान्त गद्य का अध्ययन किया जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि गद्यकार महादेवी और पद्यकार महादेवी दो विभिन्न व्यक्ति हैं। जहाँ काव्य में केवल 'मैं' की अभिव्यक्ति हुई है वहाँ गद्य में 'हम' तुम की भी अभिव्यक्ति है। इनके रेखाचित्रों के पात्र मानव है, वास्तविक परिस्थितियाँ हैं और उनकी सहानुभूति यहाँ अपेक्षाकृत अधिक खिली है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि यहाँ केवल बाह्य प्रकृति ही प्रधान रही है। अपने पात्रों के चित्रण के साथ वह स्वयं को, एवं पात्रों के मानसिक भावों को नहीं भूल पाई है। अपनी आन्तरिक प्रकृति पात्रों की आन्तरिक भावनाएं

उनके प्रत्येक रेखाचित्र में मुखरित हुई है। बाह्य और आन्तरिक प्रकृति का यह समन्वय तथा कला का परिष्कृत रूप ही इनके रेखाचित्रों की सफलता का रहस्य है।

कवीन्द्र रवीन्द्र, महाकवि निराला, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, वात्सल्यमयी सुभद्राकुमारी चौहान आदि सभी कवियों के बाह्य आकार का जहाँ इन्होंने सूक्ष्म वर्णन किया है, वहाँ इनके निजी गुणों एवं विचारों को भी उभार कर पाठक के सम्मुख रख दिया है। जिस पात्र की बाह्य रूप मुद्रा का वर्णन वे करती हैं, उसका चित्र नेत्रों के सामने उपस्थित हो जाता है और साथ ही महादेवी जी की अपनी आन्तरिक भावनाएँ भी। वे अपने को तटस्थ नहीं रख पाई हैं। समय-समय पर ये सभी पात्र इनके सम्पर्क में आए हुए हैं अतः इनका जीवन चित्र अङ्कित करते समय वे अपने को उनसे दूर कैसे रख पातीं ? अतीत के चलचित्रों में उन्होंने लिखा है 'इन स्मृति चित्रों में मेरा जीवन भी आगया है। यह स्वाभाविक भी था। अँधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुँधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते हैं, उसके बाहर तो वे अनन्त अन्धकार के अंश हैं। मेरे जीवन की परिधि के भीतर खड़े होकर चरित्र जैसा परिचय दे जाते हैं, वह बाहर रूपांतरित हो जाएगा।"

अपने किसी भी पात्र के चरित्र-चित्रण में वे उसकी कोई विशेषता अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देती। बाह्य रूप का शब्द बद्ध चित्रण करती हुई मानो वे उसके अन्तर में छिपे भावों की ओर भी संकेत करती हुई प्रतीत होती हैं। कवीन्द्र रवीन्द्र की बाह्य मुद्रा के चित्रण में उनके अन्तर की विशेषताएँ भी चित्रित हो गई हैं "प्रशान्त चेतना के बन्धन के समान, मुख पर बिखरी रेखाओं के बीच में उठी हुई सुडौल नासिका को गर्व के प्रमाण पत्र के अतिरिक्त कौन-सा नाम दिया जावे ? पर वह गर्व मानो मनुष्य होने का गर्व था, इतर अहंकार

नहीं; इसी से उसके सामने मनुष्य, मनुष्य के नाते प्रसन्नता का अनुभव करता था, स्पर्धा या ईर्ष्या का नहीं।" (पृष्ठ ३)

उनकी इस स्वाभिमानता को दृष्टि न खोज पाए परन्तु हृदय उसे अनायास ही अनुभव कर लेता है। लेखिका की सूक्ष्म-दर्शन-शक्ति से कुछ भी नहीं छिप सका है। प्राय: रेखा चित्रकारों के रेखाचित्रों में आकृति प्रमुख होती है परन्तु महादेवी जी ने अन्त: एवं बाह्य प्रकृति का सफल समन्वय प्रस्तुत किया है।

पात्रों की आन्तरिक भावनाओं का चित्रण करने की उनमें पर्याप्त क्षमता है। महाकवि निराला की अन्तर्व्यथा की सघनता का वर्णन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। पन्त की मृत्यु के झूठे समाचार को सुन कर व्याकुल निराला इस समाचार की सत्यता जानने के लिए व्यथित हो रात्रि-पर्यन्त महादेवी जी के घर प्रतीक्षा करते रहे। उनकी व्याकुलता का चित्रण महादेवी जी ने इस प्रकार किया है "वे लड़खड़ा कर सोफे पर बैठ गए और किसी अव्यक्त वेदना की तरङ्ग के स्पर्श से मानो पाषाण में परिवर्तित होने लगे। उनकी झुकी पलकों से घुटनों पर चूने वाली आँसू की बूँदें बीच-बीच में ऐसे चमक जाती थीं मानो प्रतिमा से झड़े जूही के फूल हों। × × निराला जी के सौहार्द और विरोध दोनों एक आत्मीयता के वृन्त पर खिले दो फूल हैं। वे खिल कर वृन्त का श्रृङ्गार करते हैं और झड़ कर उसे अकेला और सूना कर देते हैं। मित्र का तो प्रश्न ही क्या ऐसा कोई विरोधी भी नहीं जिसका अभाव विकल न कर देगा।" (पृष्ठ ३९-४०)

अपने पात्रों की आन्तरिक भावनाओं, अपनी अन्त: प्रकृति एवं मानवीय प्रकृति के चित्रण के साथ-साथ लेखिका जड़ प्रकृति को भी नहीं भूलीं। मानव स्वभाव एवं प्रकृति के साथ जड़ प्रकृति का स्वाभाविक तथा मनोहारी चित्रण करने की भी उनमें पर्याप्त क्षमता है।

उदाहरण के लिए सुमित्रानन्दन पन्त जी के जन्म स्थान कौसानी का चित्रण कितना सप्राण और सजीव है, पढ़ते ही आँखों के सामने कौसानी का दृश्य झूलने लगता है "उनका जन्म स्थान कौसानी मानो कूर्मांचल का सुन्दर हृदय है। वहाँ हिम-श्रेणियाँ, रजत वर्णमाला में लिखे सौन्दर्य के उज्ज्वल पृष्ठ के समान खुली रहती हैं। उस मरकत घाटी के बीच में खड़े होकर जब हम एक ओर हिम मुकुलिनी चोटियों को और दूसरी ओर चीड़, देवदारुओं की हरीतिमा से अवगुण्ठिता कौसानी को देखते हैं तब हमें ऐसा जान पड़ता है मानो हिम शिखरों की उज्ज्वल रेखाओं ने कौसानी के सौन्दर्य की कथा लिखी है और कौसानी ने अपने मरकत अंचल में हिमानी का छन्द आँका है।"

(पृष्ठ ८९)

स्वयं लेखिका को प्रकृति से कितना लगाव है इस बात की झलक इन पंक्तियों में लक्षित होती है "हिमालय के प्रति मेरी आसक्ति जन्म जात है। उसके पर्वतीय अञ्चलों में भी मौन हिमानी और मुखर निर्झरों, निर्जन वन और कलरव-भरे आकाश वाला रामगढ़ मुझे विशेष रूप से आकर्षण करता रहा है।" (५)

अतः इन रेखाचित्रों में महादेवी जी ने अन्तः प्रकृति एवं बाह्य प्रकृति का सफल समन्वय स्थापित किया है— इसमें कोई सन्देह नहीं। यद्यपि इन रेखाचित्रों में लेखिका की प्रवृत्ति समष्टि-प्रधान एवं बहिर्मुखी है, तथापि प्रत्येक शब्द में अपनी भावनाओं, अपने पात्रों की भावनाओं तथा इस जड़ प्रकृति के चित्रण में जो सामंजस्य उपलब्ध है, उसने इनको एक अपूर्व सौन्दर्य प्रदान किया है। यही इन रेखाचित्रों की सबसे बड़ी सफलता है।



रेखाचित्रों का सारांश

प्रणाम

प्राय: साहित्यकार की रचनाओं तथा उसके व्यक्तित्व की विशेषताओं में इतनी असमानता रहती है कि साहित्य से उत्पन्न पूजा भाव व्यक्ति तक पहुँच कर अवज्ञा बन जाता है अथवा व्यक्तिगत परिचय से जो आसक्ति उत्पन्न होती है, वह छलक कर साहित्य को अबीला कर देती है। परन्तु युग के महान् सन्देश वाहक कवीन्द्र रवीन्द्र के व्यक्तित्व और साहित्य में अद्भुत समानता उपलब्ध होती है। उनके मुख की स्निग्धता को घेरे हुए चाँदी के उज्ज्वल समूह जैसा केश–कलाप मानो उनके विशाल अनुभव का परिचय देता था। हिम–रेखा से घिरे अथाह नील जल–कुण्डों के समान उनकी आँखों से जहाँ स्पर्श–मधुर सरलता बरसती थी, वहाँ उनसे परिचित होने पर उनकी रश्मि रेखा जैसी दृष्टि से न कोई रहस्य रहस्य रह सकता था, और न कोई बहुरुपिया बन पाता था। उनकी पलकों का उठना गिरना ही मानो किसी अतिथि को तोलने का क्रम था। प्रशान्त चेतना के बन्धन के समान मुख पर बिखरी रेखाओं के बीच में उठी हुई सुडौल नासिका मानो मनुष्य होने के स्वाभिमान का परिचय देती थी। अधरों से बहने वाला मुक्त–हास कभी रुक जाए तो लगता था जैसे कोई संगीत लहरी टूट गई। 'अपनी कोमल उँगलियों से, असंख्य कलाओं को अटूट बन्धन में बाँधे हुए, अपने प्रत्येक पद–निक्षेप को, जीवन की अमर लय का ताल बनाए हुए वह कलाकार जब आँखों से ओझल हो जाता था तब ऐसा लगता, हमने व्यक्ति देखा है या किसी चिरन्तन राग को रूपमय ?'

लेखिका ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर को तीन विभिन्न परिवेशों में देखा है। उनसे उत्पन्न अनुभूतियाँ उसके ही शब्दों में 'कोमल प्रभात, प्रखर दोपहरी और कोलाहल में विश्राम का संकेत देती हुई सन्ध्या के समान हैं।'

रामगढ़ में कवीन्द्र रवीन्द्र का छोटा सा बंगला था जिसमें वे कभी अपनी रोगिणी पुत्री के साथ रहे थे परन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त रामगढ़ का सामीप्य भी व्यथा पूर्ण बन गया। परिणामतः वह बंगला किसी अंग्रेज अधिकारी का विश्राम होगया। महादेवी के वहां जाने पर उसने उन्हें उस बंगले के भीतर-बाहर सब दिखा दिया। उस बंगले के आसपास रहने वाले ग्रामीणों ने उस कल्पना विहारी कवि की दयाभावना की जो कथा सुनाई, उसने उसमें एक वात्सल्य भरे पिता तथा एक सहृदय पड़ोसी की भी प्रतिष्ठा कर दी। प्रायः पार्थिव व्यक्तित्व कल्पना निर्मित व्यक्तित्व को खंड-खंड कर देता है परन्तु रवीन्द्र के प्रत्यक्ष दर्शन ने महादेवी की कल्पना प्रतिमा को अधिक दीप्त सजीवता ही दी।

दूसरी बार लेखिका ने उन्हें तब देखा जब वे अपना कर्मक्षेत्र चुन चुकी थीं। 'वे अपनी कुटि श्यामली में बैठे हुए ऐसे जान पड़े मानो काली मिट्टी में अपनी उज्ज्वल कल्पना उतारने में लगा हुआ कोई अद्भुत कर्मा शिल्पी हो।'

तीसरी बार उन्हें देखने का सुअवसर महादेवी को तब प्राप्त हुआ जब वे शान्तिनिकेतन के लिए अर्थ संग्रह में यत्नशील थे। किसी सुन्दर कल्पना के छोटे से अंश का भी यथार्थ निर्माण करना बहुत कठिन कार्य है परन्तु कवीन्द्र रवीन्द्र की यह विशेषता थी कि वे अपनी कल्पना को जीवन के सब क्षेत्रों में अनन्त अवतार देने की क्षमता रखते थे। वे ऐसे साहित्यकार थे जिनमें भावना, ज्ञान और कर्म का समन्वय मिलता है। वे मानवता की यात्रा के प्रिय और दूर गामी साथी थे इसीलिए 'हर दिशा से उन पर अभिनन्दन के फूल बरसे और हर कोने से मानवता ने उन्हें अर्घ्य दिया।

कवीन्द्र के साहित्य का विस्तार और परिमाण इतना है कि उसे हृदयंगम करने के लिए यह सोचना पड़ता है—उन्होंने क्या नहीं लिखा।

इस जीवन के विस्तार में कुछ ऐसा नहीं रहा जिस पर उन्होंने नूतन आलोक डालकर नहीं देखा। उन्हें जीवन के व्यावहारिक धरातल पर कुछ भी इतना क्षुद्र और अपवित्र नहीं जान पड़ा जिनकी उपेक्षा कर आगे बढ़ा जा सके। क्षुद्र, अशिव और विरूप को विशाल शिव और सुन्दर में परिवर्तित करने की और विष में रासायनिक परिवर्तन कर उसके तत्वगत अमृत को प्रत्यक्ष करके देने की उनमें क्षमता थी। 'उनकी इस सृजन शक्ति की प्रखर विद्युत को आस्था की सजलता सम्भाले रहती थी। उन्होंने ऐसा कुछ नहीं कहा जो पहले नहीं कहा गया, पर इस प्रकार सब कुछ कहा है जिस प्रकार किसी अन्य युग में नहीं कहा गया।'

साहित्य के बाह्य रूप को तोलने–नापने से उसकी आत्मा नहीं नापी जा सकती क्योंकि साहित्यकार की सभी उपलब्धियाँ समान नहीं होतीं। केवल महान जीवन द्रष्टा साहित्यकार की ही हर उपलब्धि का महत्त्व होता है। कवीन्द्र रवीन्द्र ऐसे ही महान् साहित्यकार थे।

क्षुद्र लगने वाले मानव की महामानवता के वे स्तुति–पाठक थे। इसलिए हर युग के मानव की विजय–यात्रा में इनका साथ रहेगा। उन्होंने अपराजेय स्वर में कहा था "अरुण आभा के अन्धकार में आवृत्त रहने पर भी जिस प्रकार प्रभात कालीन पक्षी गाकर सूर्योदय की घोषणा करता है, उसी प्रकार मेरा अन्तःकरण भी वर्तमान युग के सघन अन्धकार में गा–गा कर घोषित कर रहा है कि हमारा उज्ज्वल और महान भविष्य समीप है। उस के अभिनन्दन के लिए हमें प्रस्तुत होना चाहिए।"

उन्होंने यह कभी स्वीकार नहीं किया कि मनुष्य पशु के समान परस्पर युद्ध करते रहेंगे। इसका उत्तर देते हुए वे उस पुरातन युग का स्मरण दिलाते जब प्रकृति भीमकाय जीवों (राक्षसों) को जन्म देती थी तब किसे मालूम था कि उन भीषण दानवों का विनाश सम्भव है परन्तु

नग्न तथा कोमल काव्य मानव ने अपनी शक्तियों को पहचाना और जड़ सत्ता का सामना कर भीमकाय दानवों पर विजयी हुआ।

'मनुष्य की स्वभावगत महानता की उन्होंने केवल कल्पना नहीं की वरन् अथक अन्वेषण करके उसे अपने साहित्य से सिद्ध भी किया। इसीसे उन्होंने घोषणा की "मुझे जन तो बहुत मिले पर साधारण कोई नहीं मिला।"

कवीन्द्र रवीन्द्र युग प्रवर्तक साहित्यकार थे, उनकी वाणी में नवीन जीवन की प्रथम पुकार थी और उनकी दृष्टि ने अन्धकार को भेद कर भविष्य का पहला उज्ज्वल संकेत दिया था, इसी से उनके अवश्यम्भावी अभाव की कल्पना भी किसी को सह्य न हुई। उनके महाप्रयाण ने सबको स्तब्ध कर दिया। 'मृत्यु उनके निकट आतंक का कारण नहीं थी, क्योंकि जिस भारतीय विचारधारा के वे आस्थावान व्याख्याकार थे, उसमें जीवन अनन्त है।'

उनके पार्थिव अवशेष की भस्म महादेवीजी को जब कलकत्ते से एक बन्धु ने आकर दी तो उनके मानस-पट पर फिर से उनकी तथा, शान्ति निकेतन की स्मृति उदय हो आई "तो क्या यह उसी वीणा का भस्मा शेष है जिस के तारों पर दीपक राग लहराता था ?"

'उस साहित्यकार-अग्रज ने अपना उत्तराधिकार साहित्यकारों को छोर में बांध अनजाने में ही विदा ली। दीपक चाहे छोटा हो चाहे बड़ा, सूर्य जब अपना आलोकवाही कर्तव्य उसे सौंपकर चुपचाप डूब जाता है तब जल उठना ही उसके अस्तित्व की शपथ है—जल उठना ही उसका आने वाले को प्रणाम है।'

—:o:—

रेखाएँ

एक:— श्री मैथिलीशरण गुप्त

मैथिलीशरण गुप्तजी से महादेवीजी का परिचय कब आरम्भ हुआ, इसकी उन्हे कोई निश्चित तिथि नही याद। यह भी कि जितना दीर्घ-कालीन परिचय उनका गुप्तजी की रचनाओं से है, उतना उनसे नहीं। तुक–बन्दी और समस्या पूर्ति महादेवोजी बाल्यावस्था में ही करती थीं। ऐसे ही एक बार समस्या को सवैया में उतारने के प्रयत्न में कई दिवस व्यतीत होगए। उन्हीं दिनों 'सरस्वती' पत्रिका और उसमें प्रकाशित गुप्तजी की रचनाओं से उनका नया–नया परिचय हुआ था। बोलने की भाषा में कविता लिखने की सुविधा ने उन्हें खड़ी बोली की ओर आकर्षित किया। अतः समस्या पूर्ति के स्थान पर वे विचित्र तुकबन्दी करने लगीं। जो कुछ भी लिखतीं, उसके अन्त में 'अहो' जैसा तुकान्त रख उसे खड़ी बोली का जामा पहना देती। खड़ी बोली की तुकबन्दी से जो महादेवी का परिचय हुआ, उसे ही वे गुप्त से परिचय मानती हैं।

गुप्तजी का जन्म ऐसे परिवार में हुआ जिसकी प्रतिष्ठा के ऊँचे पर्वत के चारों ओर अर्थ संकट की खाई गहरी होती जा रही थी। बाह्य दर्शन से वे अत्यन्त साधारण लगते थे परन्तु उनकी बँधी दृष्टि और मुक्त हँसी ऐसी विशेषताएं थी जो उन्हें सबसे अलग करती थीं। 'उनकी हँसी और दृष्टि उन्हें किमी के निकट अपरिचित नहीं रहने देती थीं। कभी २ तो उनका देखना और हँसना इस प्रकार चलता था कि दृष्टि हँसती सी लगती और हँसी से दृष्टि का आलोक बरसता जान पड़ता था। स्वभाव से वे विनोदी और प्रसन्न थे परन्तु विनोद की इस चंचल सतह के नीचे गहरी सहानुभूति और तटस्थ विवेक का स्थाई संगम था, उस पर सबकी दृष्टि नही जा सकी।

'लोहे के एक सिरे को पानी में डुबो देने से और दूसरे सिरे को आग में डालने से उसके मध्य में सर्दी–गर्मी का जो सन्तुलन उत्पन्न होता है, वैसा ही सन्तुलन गुप्त जी के व्यक्तित्व में था।' परीक्षा में हथौड़े के नीचे अपनी प्रतिभा को गढ़ने के प्रयत्न में उन्होंने उसे चूरचूर नहीं होने दिया। शीघ्र ही शिक्षा सम्बन्धी परीक्षाओं से मुक्ति पाकर अपने व्यक्तित्व को अपने संस्कार और वातावरण के अनुसार विकसित करने की सुविधा प्राप्त कर ली। पर जीवन की पुस्तक के हर पृष्ठ को उन्होंने जिज्ञासु विद्यार्थी के समान पढ़ा और उसकी प्रत्येक परीक्षा में वैध–उपायों से ही उत्तीर्ण होने का प्रयत्न किया। तीस वर्ष की अवस्था होने से पूर्व ही वे दो बार विधुर हो चुके थे।

गुप्त जी भक्त भी थे और कवि भी अतः उनके स्वभाव में कवि की भाँति निर्माण की भी विशेषता थी और भक्त के समान निर्मित के प्रति आत्म समर्पण भी। अपनी इसी विशेषता के कारण वे साहित्य में ऐसी कथाए खोजते थे जो लोक हृदय मे प्रतिष्ठा पा चुकी हों, परन्तु उसमें हर चरित्र का कुछ नूतन निर्माण उनका अपना रहता था। उदाहरणतः रामायण को वे नही भूले परन्तु रामायणकार जिन्हें भूल गया था, उन चरित्रों को उन्होंने अपने ढंग से स्मरण किया। सारांशतः उनके साहित्य मे जो नूतनता है उसका आधार पुराना है और जो पुराना है उस पर रंग नया है; इसी प्रकार अपने जीवन में उन्होंने कुछ लिया और कुछ सृजन किया।

गुप्त जी स्वभाव से नम्र भी थे परन्तु यह विनय उनकी वैष्णवता का ऐसा पानी था जो बड़े बड़े जहाजों को संभाल सकता है किन्तु छोटे–छोटे पत्थर का भी भार सहन नहीं कर सकता।

अपने जीवन के पिछले पहर में आकर वे ऋण के दुर्वह भार से मुक्त हो सके। उन्हें कई आर्थिक विषमताओं का सामना करना पड़ा

जिनकी स्मृति मात्र से ही उनकी आँखें सजल हो जाती थीं परन्तु अपने स्वाभिमान की शान पर उन्होंने कभी आँच नहीं आने दी। अर्थदम्भी के प्रति वे असहिष्णु थे। याचक की सहनशीलता का भी उनमें अभाव था, परन्तु आत्मीय जनों के अनुरोध अस्वीकार करने की दृढ़ता का भी उनमें अभाव था। एक बार कला भवन के लिए अर्थ संग्रह के उद्देश्य से जब एक शिष्ट–याचक–मण्डल की योजना बनाई गई और उसमें उनका नाम भी लिख दिया गया तो मानो एक प्रकार से उन पर आतङ्क की छाया सी पड़ गई, भला आत्मीय जनों का विरोध कैसे किया जा सकता था ?

गुप्त जी की मुख्य विशेषता थी उनकी स्पष्टवादिता। किस अवसर पर किस बात को कैसे छुपा लेना चाहिए— इस कला से वे अपरिचित थे। परिणामतः उनकी इस विशेषता के कारण उन्हें किसी मन्त्रणा में सम्मिलित करना खतरे से खाली नहीं होता था। प्रायः जहाँ कुछ मौन रहना होता था, वहाँ वे सब कुछ कह देते थे। जो बात उनके हृदय में होती थी, उसे वे वाणी–बद्ध कर देते थे। किसी भी वर्ग के व्यक्ति के सम्मुख उसके दोषों की व्याख्या करने से वे नहीं हिचकते थे। ऐसी मुखर स्पष्टवादिता प्रायः लौकिक सफलता से मेल नहीं खाती।

व्यक्तिगत सुख दुःखों में वे विचलित नहीं होते थे, परन्तु किसी निर्दोष के प्रति किए गए अन्याय के प्रति वे असहिष्णु थे। सन् ४२ के आन्दोलन में जब उन्हें और उनके अग्रज को अकारण ही बन्दीगृह का अतिथि बनाया तो वे उग्र हो उठे। जेल अधिकारी के यह पूछने पर कि 'आप कुछ कहेंगे ? के उत्तर में उनकी नम्रता शिला से टकरा कर उग्रता में फूट पड़ी 'आपका दिमाग खराब हो गया है, आपसे क्या बात करें, आप निर्दोषों को पकड़ते घूमते हैं। हमारा क्या, हम तो लेखक ठहरे, यहाँ सब कुछ देखेंगे और इसके खिलाफ लिखेंगे।'

कवि होने के कारण गुप्त जी भावुक थे और इस भावुकता के साथ चलने वाली कर्म तत्परता भी उनकी विशेषता थी। अतः यदि यह कहें कि उनका दद्दा रूप कवि रूप से अधिक व्यापक था, तो आश्चर्य न होगा। 'वे नगर के दद्दा ही नहीं, प्रान्त भर के दद्दा थे और जो उनके सम्पर्क में आते थे उन्हें भी दूसरी पहचान स्मरण नहीं रहती।' वे एकता के समर्थक थे। प्रत्येक अतिथि चाहे वह शिखाधारी पंडित हो अथवा दाढ़ी वाले मियाँ साहब; व्यापारी हो अथवा मजदूर सब उनके घर आकर देवता बन जाते थे। वे सबकी समस्याएँ ध्यान से सुनते और सबका काम सहज भाव से करते। किसी का बनता हुआ मकान देखना, किसी की नई दुकान का निरीक्षण करना, किसी के खेत की बात पूछना वे अपना कर्तव्य समझते थे।

'गुप्त जी की आस्था उस गहराई तक पहुँच चुकी थी जहाँ दूसरों के विरोध की आँधी का भय नहीं रहता। परिणामतः उनमें उस सतर्कता का अभाव था जो दो भिन्न विचार वालों को नहीं मिलने देती।'

'यदि अपने आप अत्यन्त साधारण जीवन व्यतीत करने वाले पुत्र के लिए पूर्वजों के ऋण की छाया कष्ट है तो गुप्त जी ने इस कष्ट के अङ्गार-पथ को पार किया। यदि अपनी नौ-नौ सन्तानों को अपने हाथ से मिट्टी को लौटा देना पिता का दुःख है, तो गुप्त जी को इस दुःख का समुद्र भी पार करना पड़ा।'

यदि अपनी परीक्षाओं में अविचलित रहना भक्त का वरदान है, तो गुप्त जी पूर्ण काम थे। यदि अपने अहं को समष्टि में मिला देना कवि की मुक्ति है तो गुप्त जी मुक्त कवि थे। उन्होंने तो विश्वास के साथ कहा था—

'अर्पित हो मेरा मनुज काय
बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय।'

दो:— सुभद्राकुमारी चौहान

सुभद्राकुमारी चौहान से महादेवीजी का परिचय तब हुआ जब वे पाँचवी कक्षा की विद्यार्थिनी थीं और सुभद्रा जी सातवीं कक्षा की। महादेवीजी की कविता लिखने में बाल्यावस्था से ही रुचि रही है परन्तु वे कविता लिख कर किसी को न दिखाने का सफल प्रयास भी करती थीं और एक बार सुभद्राजी ने इनका यह 'अपराध' पकड़ ही लिया। (उस युग में कविता लिखना अपराध ही समझा जाता था।) स्वयं सुभद्राजी भी कविता लिखती थीं, अतः अब दो साथी हो गए। यहीं से उनका परिचय बढ़ने लगा।

सुभद्राजी के बाह्य रूप में दीखने वाली प्रत्येक साधारण रेखा के लिए उनकी भावना की दीप्ती दीपशिखा के सदृश संचरित होकर असाधारण कर देती थी। वीरगीतों की इस कवयित्री के देह–समूह में कुछ उग्र अथवा रौद्र नहीं था 'कुछ गोलमुख,चौड़ा माथा,सरल भृकुटियाँ बड़ी और भावनास्नात आँखें, छोटी सुडौल नासिका, हँसी को जमाकर गढ़े हुए से ओठ और दृढ़ता सूचक ठुड्ढी ··········सब कुछ मिला कर एक अत्यन्त निश्छल, कोमल उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का ही पता देते थे।' निश्चिन्त दृष्टि और सरल विश्वास, जो माता की गोद में दूध पीते बालक की अचानक फूट पड़ने वाली दूध से धुली हँसी में मिलता है, वैसा ही भाव "मैंने हँसना सीखा है, मैं नहीं जानती रोना।" कहने वाली सुभद्राजी में उपलब्ध होता था।

अपने निश्चित लक्ष्य–पथ पर स्थिर रहना और हँसते–हँसते सब कुछ सहना उनका स्वभावगत गुण था। जब वे आठवीं कक्षा की विद्यार्थिनी थी तभी उन्हें विवाह सूत्र में बाँध दिया गया था। अतः असमय में ही अध्ययन क्रम भंग हो जाने के कारण उन्हें विश्वविद्यालय

की शिक्षा तो न मिल सकी। उन्होंने जो कुछ सीखा, अनुभव की पुस्तक से सीखा और उनकी प्रतिभा ने उसे सर्वथा निजी विशेषता दी। 'भाषा, भाव, छन्द की दृष्टि से नए, 'झांसी की रानी' जैसे वीर गीत तथा सरल स्पष्टता में मधुर प्रगीत मुक्त, यथार्थ वादिनी मार्मिक कहानियाँ आदि उनकी मौलिक प्रतिभा के ही सृजन हैं।

स्वतन्त्रता के युद्ध के लिए सन्नद्ध अपने सेनानी पति के साथ प्रेम के आदान-प्रदान का अधिक अवकाश न उन्हें मिला और न ही उनके पति को। उनका मंगल-कंकण रण-कंकण बन गया और उनकी गृहस्थी कारागार में ही बसी। जीवन का यह क्रम जो विवाह के साथ आरम्भ हुआ था, वह अन्त तक चलता ही रहा। एक बार जेल में उन्हें अपनी भूख से व्याकुल बालिका को अरहर की दाल दलने वाली महिलाओं से थोड़ी सी दाल लेकर तवे पर भून कर खिलानी पड़ी परन्तु फिर भी उनका मन कभी न हारा और न अपनी परिस्थितियों को अनुकूल बनाने के लिए कोई समझौता स्वीकार किया।

वे कभी दीन हीन नहीं हुई। वे ऐसी गृहणी थी जो अपने घर की धरती को समस्त हृदय से चाहती हो। कोमल और ओज से भरी कविताएं लिखने वाले हाथों से वे गोबर के कंडे पाथती थीं, घर के भीतर का आँगन लीपती थीं और बर्तन भी माँजती थीं। उनके छोटे से अधबने घर में रंग-बिरंगे फूलों के पौधों की क्यारियाँ, ऋतु के अनुसार तरकारियाँ और गाय बच्छे आदि सभी बड़ी गृहस्थी की साज-सज्जा छोटे चित्र की भांति उपस्थित थी छोटे से घर को ममता से इतना विशाल बना रखा था कि कोई उनके घर से कभी निराश नही लौटा था।

सुभद्रा जी का जीवन कभी किसी क्षणिक उत्तेजना से संचालित नहीं हुआ और न ही उनकी ओज भरी कविता वीर रस की घिसी-पिटी

लीक पर चली। विश्वास प्रेम एवं साहस को उन्होंने जीवन–साथी के रूप में स्वीकार किया। अपने राजनीतिक–जीवन और पारिवारिक–जीवन दोनों में अपने विद्रोह को सफलता पूर्वक उतार कर सृजन का रूप दिया था। अपने पति को इन्होंने पत्नी के रूप में ऐसा अभिन्न मित्र दिया जिसकी बुद्धि और शक्ति पर निर्भर रह कर जिसका अनुगमन किया जा सके।

उस समय बच्चों के पालन के लिए मनोवैज्ञानिक तथा मुक्त वातावरण का अभाव खटकता था फिर भी सुभद्रा जी के वात्सल्य का विधान अलिखित और अटूट था। उनका कवि हृदय भला इस विधान को कैसे स्वीकार कर सकता था। अतः उन्होंने अपने बच्चों को विकास के लिए मुक्त वातावरण दिया। अपनी सन्तान के सुखमय भविष्य के लिए उन्होंने बड़ा से बड़ा त्याग भी किया। पुत्री के विवाह के समय तो अपने परिवार से भी इन्होंने संघर्ष किया। 'जिस कन्या दान प्रथा का सब मूक भाव से पालन करते आ रहे थे उसके विरुद्ध उन्होंने घोषणा की "मैं कन्या–दान नहीं करूँगी। क्या मनुष्य, मनुष्य को दान करने का अधिकारी है ? क्या विवाह के उपरान्त मेरी बेटी मेरी नहीं रहेगी ?"

हरिजनों को उनका प्राप्य दिलाने के लिए इन्होंने अपने संघर्ष–कालीन साथियों से भी विद्रोह किया। उनका क्षात्र–धर्म कभी किसी अन्याय के प्रति क्षमा–शील नहीं हो सका था।

महादेवी जी के प्रति सुभद्रा जी का जो सरल स्नेह था, वह जीवन-पर्यन्त अमिट लक्ष्मण–रेखा से घिरा हुआ सुरक्षित रहा। इनके (महादेवी जी के) घर जब भी वे आतीं उनके लिए छोटी–छोटी पत्थर या शीशे की प्यालियां, मिर्च का अचार, बासी पूरी, पेड़े, नीली सुनहरी चूड़ियां, आदि उनके लिए लाना कभी नहीं भूलती थी। और जब कभी

किसी कवि-सम्मेलन में जाते समय प्रयाग में उतर पातीं तो महादेवी जी स्टेशन पर आ कर ही उनसे मिलतीं। इस अवसर पर भी अपने थैले में से चमकीली चूड़ियाँ निकाल कर वे महादेवी जी को अवश्य पहना देती थीं। और चूड़ियाँ पहना कर बच्चों की भाँति प्रसन्न हो जातीं ?

सुभद्रा जी की आर्थिक स्थिति सम्पन्न न थी अतः कवि सम्मेलनों के निमन्त्रण प्रायः उन्हें स्वीकार करने पड़ते थे। अनेक कवि सम्मेलनों में महादेवी जी और सुभद्रा जी ने साथ-साथ भाग लिया। जब दोनों साथ होतीं तो बात एक मिनट और हँसी पाँच मिनट का अनुपात रहता था।

किसी भी परिचित अथवा अपरिचित साहित्यक साथी की त्रुटियों के प्रति वे सदैव सहिष्णु रहीं और उनके गुणों के मूल्यांकन में उदारता से काम लेना इनकी प्रमुख विशेषता थी। अपने को बड़ा बनाने के लिए दूसरों को छोटा प्रमाणित करने की दुर्बलता उनमें असम्भव थी।

सन १९४८ ई० बसन्त पंचमी को सुभद्रा जी ने इस संसार से विदा ली। "उस दिन उनके पार्थिव अवशेष को त्रिवेणी ने अपने श्यामल-उज्ज्वल अंचल में समेट लिया तब नीलम-फलक पर श्वेत चन्दन से बने उस चित्र की रेखाओं में बहुत वर्षों पहले देखा एक किशोर मुख मुस्कराता जान पड़ा।"

'यहीं कहीं पर बिखर गई वह छिन्न
विजय माला सी।'



तीन:— सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

महाकवि 'निराला' को महादेवीजी ने भगिनी का सरल स्नेह दिया है; और निरालाजी ने 'अपने सहज विश्वास से भरे महादेवी के कच्चे सूत के बन्धन को जो दृढ़ता और दीप्ती दी है, वह अन्यत्र दुर्लभ रहेगी।'

'निराला' जी के जीवन की मार्मिक झाँकी उन चित्र व्यथाओं में मिल सकती है जिन्हें अतीत ने आग के अक्षरों में आँसू के रंग भर-भर कर आँका है। 'उनके जीवन के चारों ओर परिवार का वह लौह सार घेरा नहीं था जो व्यक्तिगत विशेषताओं पर भी चोट करता है और बाहर की चोटों के लिए ढाल भी बन जाता है। उनके निकट माता बहन भाई, आदि के कोमल साहचर्य के अभाव का ही नाम शैशव रहा है। जीवन का बसन्त ही उनके लिये पत्नी-वियोग का पतझड़ बन गया। आर्थिक कारणों ने उन्हें अपनी मातृहीन सन्तान के प्रति कर्त्तव्य-निर्वाह की सुविधा भी नहीं दी। पुत्री के अन्तिम क्षणों में वे निरुपाय दर्शक रहे और पुत्र को उचित शिक्षा से वंचित रखने के कारण उसकी उपेक्षा के पात्र बने।

अपने अस्त-व्यस्त जीवन को व्यवस्थित करने का असफल प्रयास उन्होंने कई बार किया था, परन्तु अपनी असीमित दया भावना के कारण वे कभी अपने धन को ही अपने लिए व्यवस्थित रूप से खर्च नहीं कर पाए थे। एक बार कहीं से तीनसौ रुपए पाने पर उन्होंने महादेवी जी को खर्च का बजट बना देने के लिए कहा परन्तु दूसरे दिन सवेरे ही— 'किसी का परीक्षा शुल्क जमा कराने के लिए पचास रुपयों की जरूरत पड़ी। संध्या होते होते किसी साहित्यिक मित्र को साठ रुपए देने पड़ गये। दूसरे दिन लखनऊ में किसी ताँगे वाले की माँ को चालीस का मनीआर्डर कराया और दोपहर को किसी मित्र की भतीजी के लिए सौ

रुपए देने पड़े। इस प्रकार तीसरे दिन ही वह जमा किया रुपया खर्च होगया। इतना ही नहीं, नित्य व्यवहार में आने वाली वस्तुएं कोट, रजाई आदि भी प्रायः दूसरे ही दिन किसी अन्य का कष्ट दूर करने के लिए अन्तर्धान हो जाती थीं।

अपने सम्बन्ध में अव्यवस्थित निरालाजी अपने अतिथि की सेवा के लिए सदैव सतर्क रहते थे। अपने अतिथि के लिए तो वे भोजन बनाने से लेकर झूठे बर्तन मांजने तक का काम सहर्ष करते थे। 'जो अपना घर समझ कर आए हैं उनसे यह कैसे कहा जाय कि उन्हें भोजन के लिए दूसरे के घर जाना होगा।'

उनके भाव की अतल गहराई और अबाध वेग भी आधुनिकता के छिछले और बंधे भाव-व्यापार से भिन्न है। श्री सुमित्रानन्दन पंत जी एक बार टाइफाइड के ज्वर से पीड़ित थे। किसी समाचार पत्र ने उनकी मृत्यु की झूठी खबर छाप डाली इस झूठे समाचार को सुन उनकी व्यथा की कोई सीमा न रही; और इस समाचार की सत्यता को जानने के लिए वे रात्रीपर्यन्त महादेवीजी के घर के पास पार्क में खुले आकाश के नीचे ओस से भींगी दूब पर बैठे रहे। मित्र का तो प्रश्न ही क्या, ऐसा कोई विरोधी भी नहीं था जिस का अभाव उन्हें विकल न कर देता हो। 'अपरा' पर इक्कीससौ के पुरस्कार की सूचना मिलने पर उन्होंने महादेवीजी को अपनी सात्त्विक मर्यादा से वह रुपया मंगवाने के लिए लिखा। परन्तु कुछ दिवस उपरान्त स्वयं जीर्ण-शीर्ण उत्तरीय ओढ़े ये कहने आगये कि स्वर्गीय मुन्शी नवजादिकलाल की विधवा को पचास रु० प्रति मास भेजने का प्रबन्ध किया जाए।

वे अपने शरीर, जीवन साहित्य सभी में असाधारण थे। उनमें विरोधी तत्त्वों की भी सामंजस्य पूर्ण संधि थी। साहित्यकार संसद में सब सुविधाएं उपलब्ध होने पर भी उन्होंने स्वयं पाकी बनकर एक बार

भोजन करने का अनुष्ठान आरम्भ किया। पित्ती निकलने पर प्रायः वे गेरू मिले हुए आटे के पुए खाया करते थे।

निरालाजी की दृष्टि में दर्प और विश्वास की धूप छाँही हाभा थी। 'उनकी दृष्टि में सन्देह का वह पैनापन नहीं था जो मनुष्य के व्यक्त परिचय का अविश्वास कर उसके मर्म को वेधना चाहता है। वे सदा व्यक्ति के उस परिचय को सत्य मान कर चले जिसे वह देना चाहता है अन्त में उस स्थिति तक पहुँच जाते जहाँ वह सत्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं देना चाहता। उनके ओठों की खिंची हुई सी रेखाओं में कहीं घृणा की वक्रता लक्षित नहीं होती थी। किसी के प्रति क्रूर होना उनके लिए असम्भव था। वे विचार से क्रान्तिदर्शी थे और आचरण से क्रान्तिकारी।

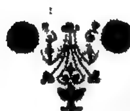
उनकी संचय वृत्ति ऐसी थी कि बहुत सी रूढ़ियों से भी उन्होंने अपने जीवन के अभाव को भरा हुआ था। दूसरों की बद्धमूल धारणाओं पर आघात कर उनकी खिजलाहट पर प्रसन्न होना उनका स्वभाव था। यह विरोध द्वेषमूलक न होते हुए भी कठिन चोट करता था। उनके संकल्प और कार्य के बीच में ऐसी प्रत्यक्ष कड़ियाँ नहीं रहीं, जो संकल्प के औचित्य और कर्म के सौन्दर्य की व्याख्या कर सकें। ऐसे असाधारण व्यक्तित्व को समझने के लिए बौद्धिकता और हृदय की संवेदनशीलता का सन्तुलन अपेक्षित है। परन्तु ऐसा सन्तुलन सुलभ न होने से उन्हें समझने वाले विरले ही मिले।

अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों से उन्होंने कभी ऐसी हार नहीं मानी जिसे सह्य बनाने के लिए हम समझौता कहते हैं। निश्छल और वीर स्वभाव के कारण वे अपने बचाव को भी कायरता की संज्ञा देते थे। वे तो अपने पथ की बाधाओं को चुनौती देकर लक्ष्य पर पहुँचने वाले विद्रोही साहित्यकार थे। यहाँ तक कि उन्होंने अपनी आर्थिक विपन्नता

से भी संघर्ष किया। इन संघर्षों के आघात उनकी हार के नहीं शक्ति के प्रमाण-पत्र हैं।

किसी की हल्की व्यथा भी उनके हृदय में गम्भीर प्रतिध्वनि जगाती और किसी की छोटी सी आवश्यकता भी उन्हें सर्वस्व दान देने की प्रेरणा देती।

किसी साहित्यकार के जीवन का विश्लेषण उसके साहित्य के मूल्याङ्कन से भी कठिन है और फिर निराला ऐसे महान कलाकारों के जीवन का इतिवृत्त चित्रण करना बाधापूर्ण हो तो विस्मय की बात नहीं इनकी जीवन धारा वस्तुतः ही व्याख्या बहुल है। वे किसी सुलभ सीप में ढले सुडौल मोती नहीं जिसे अपनी महार्घता का साथ देने के लिए स्वर्ण और सौन्दर्य प्रतिष्ठा के लिए अलङ्कार का रूप चाहिए। वे तो अनगढ़ पारस के भारी शिला खण्ड हैं। न मुकुट में जड़ कर कोई उसकी गुरुता सम्भाल सकता है और न पदत्राण बना कर कोई उसका भार उठा सकता है। वे जहाँ हैं, वहीं उसका स्पर्श सुलभ है। साहित्य के नवीन युग-पथ के प्रत्येक फूल पर निराला जी के चरण का चिह्न और हर शूल पर उनके रक्त का रङ्ग है। इस पथ पर इनकी अङ्क स्मृति गहरी और स्पष्ट, उज्ज्वल और लक्ष्य निष्ठ रहेगी।



चार:— श्री जयशंकर प्रसाद

इस रेखाचित्र का आधार प्रसाद का साहित्य, लेखिका का प्रसादजी से कुछ घन्टों का परिचय तथा कुछ प्रचलित स्तुति-निन्दापरक कथाएं हैं। महादेवीजी ने प्रसाद को प्रथम और अन्तिम बार तब देखा जब वे कामायनी का दूसरा सर्ग लिख रहे थे और ये 'सान्ध्यगीत' लिख चुकी थीं। भागलपुर से प्रयाग जाते समय एक बार मार्ग में प्रसाद के दर्शनार्थ ही इन्होंने कुछ घन्टों के लिए यात्रा भंग की। प्रसादजी को काशी में सब 'सुंघनी साहु' के नाम से ही जानते थे, अतः उन्हें घर ढूंढने में बहुत कठिनाई हुई। निराश हो वे स्टेशन के वे-टिंग रूम में लौटने ही वाली थीं, कि किसी ने प्रश्न किया —'क्या सुंघनी साहु' के घर जाना है ? 'सुंघनी साहु' के अर्थ की स्पष्टता के लिए जब उन्होने पूछा कि वे क्या काम करते हैं तो पता चला कि उनकी तम्बाकू की दूकान है और बड़े बड़े कवित्त भी लिखते हैं। हो सकता है— ऐसे कवित्त लिखने वाले 'सुंघनी साहु' प्रसाद जैसे कवि से अपरिचित न हों और उनके घर का पता बताने में समर्थ हों—अतः वे उन्ही के घर चल दी। परन्तु वहाँ पहुँचने पर स्वयं प्रसादजी बाहर आए। जब महादेवीजी ने यह अनुभव किया कि प्रसादजी ही 'सुंघनी साहु' हैं तो उनके लिए अपनी हँसी को रोकना असम्भव होगया।

इतने महान कवि के रहने के स्थान में ऐसा कुछ दिखाई नही देता था जिसे सजावट कहा जा सके। 'कमरे मे एक साधारण तख्त और दो तीन सादी कुर्सियां, दीवाल पर दो तीन चित्र और अलमारी मे कुछ पुस्तकें।

प्रसादजी उन प्रतिभाशाली साहित्यकारों में थे जिन के जीवन मे सघर्ष अनिवार्य होता है परन्तु बड़े-बड़े सघर्ष भी जिनकी जीवनी शक्ति

को धीरज नहीं कर पाते । उन्हें ऐसे सम्पन्न परिवार में जन्म मिला था जो ऋणग्रस्त था । भाई बहनों में सबसे छोटे थे अतः स्नेह-दुलार कुछ अधिक प्राप्त कर सके थे । परन्तु किशोरावस्था में ही पारिवारिक उत्तरदायित्व और ऋण का भार कन्धों पर आ पड़ा तरुणाई में ही वे माता-पिता, बड़े भाई, दो पत्नियों और एक पुत्र की वियोगावस्था झेल चुके थे, जो उनके मन पर दुखने वाली चोट छोड़ गई । शायद इन सब प्रकार के अन्तरंग बहिरंग संघर्षों में मानसिक संतुलन बनाए रखने के प्रयास में ही उन्हें उस आनन्द वाद दर्शन की उपलब्धी हो गई हो जिसके भीतर करुणा की अन्तः सलिला प्रवाहित है । परन्तु भीतर की चिन्ता उनके अस्तित्व को क्षार करती रही । कण-कण कटती हुई शिला के समान उनकी जीवनी शक्ति रिसती गई और जब उन्होंने जीवन के सब संघर्षों पर विजय पाली तो जीवन की बाजी हार गए जिसमें हार जाने की संभावना भी उनके मन में नहीं उठी थी ।

उन्हें क्षय रोग ने घेर लिया । अस्वस्थ रहते हुए भी वे एक ओर अपनी लौकिक स्थिति ठीक करने में संलग्न थे और दूसरी ओर कामायनी में अपने सम्पूर्ण जीवन दर्शन को भावात्मक अवतार दे रहे थे । उनके सामने अकेला किशोर पुत्र था और अपने किशोर जीवन के संघर्षों की स्मृति थी । उस किशोर पुत्र के भविष्य पर किसी दुर्वह भार की काली छाया न डाल उन्होंने अदम्य साहस और आस्था से मृत्यु की उत्तरोत्तर निकट आने वाली पदचाप सुननी ही स्वीकार की । इससे भी वे विचलित नहीं हुए । उन जैसे संकोची व्यक्ति के लिए किसी से स्नेह और सहानुभूति की याचना सम्भव नहीं थी । महादेवीजी ने इनके नाटक 'चन्द्रगुप्त' में सिंहरण की इन पंक्तियों में प्रसाद के मनकी बात देखी है—'अपने को बचाऊँगा नहीं, जो मेरे मित्र हों आवें और अपना प्रमाण दें ।' सम्भव है उन्हें किसी की प्रतीक्षा रही हो, परन्तु उनका जीवन अपना

संग्राम बंध हो कर खड़ा हो और अपने प्राण को बचाने का कोई प्रयत्न न किया हो। जब हिन्दी जगत 'कामायनी' के प्रकाशन के उपरान्त एक प्रकार से पर्वोत्सव मना रहा था, तब उनके महाप्रयाण का समय भी आ पहुँचा।

प्रसादजी की प्रतिभा ने साहित्य के अनेक क्षेत्रों को एक साथ स्पर्श किया है। करुण गीत, अतुकान्त रचनाएं, मुक्त छन्द, खण्ड काव्य, महा काव्य, उपन्यास, नाटक, निबन्ध आदि सब उनके साहित्य के बहुमुखी प्रसार के अन्तर्गत हैं। साहित्यिक प्रतिभा के साथ उनकी व्यवहार बुद्धि भी कुछ कम असाधारण नहीं है। धूमिल नए युग के काव्य और विचार को आलोक की पृष्ठभूमि देने के लिए ही उन्होंने इन्द्र, आमरण जैसे पात्रों की कल्पना को मूर्त रूप दिया। 'हिन्दी साहित्य को उनका महत्त्व-पूर्ण दान 'कामायनी' है। ....अपने काव्य सौन्दर्य के कारण भी और अपने समन्वयात्मक जीवन दर्शन के कारण भी।'

'प्रसाद का जीवन बौद्ध विचार धारा की ओर उनका झुकाव, चरम त्याग बलिदान वाले करुण कोमल पात्रों की सृष्टि उनके साहित्य में बार-बार अनुगुंजित करुणा का स्वर आदि यह प्रमाणित करेंगे कि उनके जीवन के तार इतने सधे और खिंचे हुए थे कि हल्की सी कम्पन भी उनमें अपनी प्रतिध्वनि पा लेती थी।'

'हमारे युग की समष्टि के हृदय और बुद्धि में जो भाव और विचार नीरव उमड़-घुमड़ रहे थे उन्हें कवि ने जागरण के स्वर देकर मुखरित किया।'

"पर जब 'हिमाद्रि तुङ्ग शृङ्ग से' माँ भारती ने अपने इस स्वर साधक को पुकारा तो वह अपनी वीणा रख कर मौन हो चुका था।"



पाँच:— श्री सुमित्रानन्दन पन्त

पन्त जी से महादेवी के परिचय की कथा बहुत विचित्र है। पाठ्य पुस्तकों के प्रति महादेवी जी का सदैव घोर विराग रहा है; और समस्या पूर्ति में तो ये बचपन में ही ठोक-पीट कर वैद्यराज बना दी गईं थी खड़ी बोली की तुक बन्दी भी इन्हें अनायास ही वातावरण से प्राप्त हो गई थी; परन्तु इन दोनों से भिन्न जो एक भाव-जगत उनके भीतर रेखा-रेखा करके बन रहा था, उसके प्रति तब तक न उनकी जिज्ञासा थी न बोध।

इन स्थितियों में कवि-सम्मेलनो के प्रति इनका विशेष अनुराग हो जाना स्वाभाविक ही था। ये कवि प्रायः छात्रावासों या शिक्षा संस्थाओ के तत्वावधान में किसी वयोवृद्ध कवि की अध्यक्षता में आयोजित होते थे और उनमें पूर्व निश्चित समस्याओं की पूर्तियाँ और और विषय पर रचित कविताएं सुनाई जाती थी। ऐसे ही एक बार हिन्दू बोर्डिङ्ग हाऊस मे श्री हरिऔध जी की अध्यक्षता में आयोजित कवि सम्मेलन मे जाने का अवसर मिला। उससे पहले भी वे कई सम्मेलनों में उपस्थित होकर कई पदक भी प्राप्त कर चुकीं थीं। मंच के एक ओर वे अपनी सहयोगिनी छात्राओं और अध्यापिकाओं के साथ गम्भीर मुद्रा में समासीन थी ' 'अचानक दूसरी तरफ बैठे छात्रों तथा अध्यापकों पुरुषाकार समूह में कुछ हलचल सी उत्पन्न करती हुई एक कोमलकांत कृशांगी मूर्ति अविर्भूत हुई ··· ··· · ·· आकण्ठ अवगुण्ठित करती हुई हल्की पीताभ सी चादर, कंधों पर लहराते हुए कुछ सुनहले से केश, तीखे नक्श और गौर वर्ण के समीप पहुँचा हुआ गेहुआँ रङ्ग, सरल दृष्टि की सीमा बनाने के लिए लिखी हुई-सी भवें, सिये हुए से ओंठ, कोमल पतली उंगलियों वाले सुकुमार हाथ— यह सब देखकर सबको भ्रम हुआ। परन्तु वह मूर्ति पुरुषाकार समूह में ही प्रतिष्ठित हो गई।

यह देख कर सबको आश्चर्य हुआ। महादेवीजी के छात्रावास लौटने का समय हो गया अतः उनका परिचय उस दिन न हो सका। कई वर्ष उपरान्त फिर जब डा० धीरेन्द्र वर्मा ने अपने विवाह के अवसर पर अपने कवि पंतजी से महादेवी का परिचय कराया।

कौसानी में संवत् १९५८ वि० में प्रकृति के उज्ज्वल हरित अंचल में जब सुमित्रानन्दन पंतजी ने जन्म लिया तो उनको जन्म देने वाली की पलकें चिर-निद्रा में मुँद चुकी थीं। मातृहीन होने के कारण और भाइयों में छोटे होने के कारण उन्हें प्यार तो सबसे मिला परन्तु उस प्यार में 'अरे बेचारा मातृहीन है' का भाव भी मिला हुआ था। बड़े होकर ऐसे बालक सबसे अधिक सहृदय हो सकते हैं, परन्तु उनमें अस्वा-भाविकता भी सबसे अधिक आ जाती है। अतः पंतजी के मन का संकोच, उनकी अन्तर्मुखी वृत्तियां सब उनके असाधारण बालकपन की ही उपज है।

'जब वे तीसरी कक्षा में पढ़ते थे तो उनके अपने गोपाल दत्त नाम की कवित्वहीनता अखरने लगी। सुमित्रानन्दन जैसा श्रुति मधुर नाम अपने लिए खोज लेने वाली उनकी असाधारण बुद्धि ने जीवन और साहित्य के अनेक क्षेत्रों में अपनी सृजन शीलता का परिचय दिया है।' वेश-भूषा रहन-सहन से लेकर सूक्ष्म भावों तथा चिन्तन तक सब कुछ उनके स्पर्श मात्र ही से असाधारण होता रहा है। 'स्वभाव और शरीर में भी इन्हें असाधारण कोमलता मिली है, परन्तु उसमें प्रकृति के क्षति पूर्ति सम्बन्धी नियम का अभाव नहीं है।

उनके सुकुमार शरीर को कितनी बार अस्वस्थता से संघर्ष करना पड़ा है और स्वभाव को कितनी प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझना पड़ा है। एक बार वे क्षय रोग के सन्देह में बहुत दिनों तक स्व० डा० नीलाम्बर जोशी के पास भरतपुर में रहे। कई बार टाइफाइड से पीड़ित

होकर जीवन मृत्यु की ग्रन्थि में पड़े रहे। परन्तु उन के कोमल शरीर ने सब परीक्षाएं पास की हैं, कभी उनसे पराजय स्वीकार नहीं की और वे आज भी कोमल तथा सुकुमार हैं। इन अनुभवों ने तो इनकी कोमलता और सुकुमारता पर एक आर्द्रता का पानी ही फेरा है।

आर्थिक दृष्टि से पंतजी ने सम्पन्नता की ऊँची सीढ़ी से लेकर विपन्नता की अन्तिम सीढ़ी तक अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं। जिस अल्मोड़े में उनके कई मकान थे, वहाँ पर ही उन्हें किराए के छोटे से मकान में रहना पड़ा परन्तु इससे न तो उनकी हँसी मलिन हुई और अभिमान आहत हुआ। परिवार का ढाँचा टूट गया था, साहित्य से भी कोई आय न थी। इन्हीं परिस्थितियों में वे कई वर्ष कालाकांकर में रहे।

व्यवहार में पन्तजी अत्यन्त शिष्ट, मधुरभाषी तथा विनोदी हैं। इनकी कोई बात किसी को किसी तरह की चोट न पहुँचा दे इसका वे बहुत ध्यान रखते हैं।

'कवि पुत्र परिवार का सबसे बेकार अंग माना जाता है। सुमित्रानन्दनजी ने कमाऊँ सपूत बनकर सबके ललाट का लाञ्छन धो डाला है।' ग्राम्या, युगवाणी आदि में इन्होंने अपनी सद्यः प्राप्त यथार्थ-भूमि की सम्भावनाओं को स्वर-चित्रित करने का प्रयत्न किया है।

'परिग्रह की दृष्टि से पंतजी चिरकुमार सभा के आजीवन अध्यक्ष हो सकते हैं। आरम्भ में उनकी गृहस्थी के लिए परिस्थितियाँ बाधक रहीं और जब परिस्थितियों ने अनुकूलता दिखाई तब उनकी मानसिक सन्ततियों की अनन्तता ने उनका मार्ग रोक दिया।'

आधुनिक युग साहित्यकार की चरम-शक्ति-परीक्षा का काल रहा है। संघर्ष की इस झंझा में इस कोमल तथा सुकुमार साथी के लिए सबकी चिन्ता स्वाभाविक ही थी परन्तु जब यह आँधी थमी तो उन्होंने देखा कि लचीले बेंत के समान झुककर उन्होंने तूफान को अपने ऊपर से बह जाने दिया है और अब नए प्रभात के अभिनन्दन के लिए उन्मुख खड़े हैं।



छः- सियारामशरण गुप्त

महादेवीजी ने श्री सियारामशरण गुप्तजी के हठ पर अवस्था में उनसे छोटे होते हुए भी जीजी बना कर उन्हें अनुजता के जिस सोपान पर प्रतिष्ठित कर दिया, उससे वे कभी रंचमात्र भी इधर से उधर नहीं खिसके। उनका यह संयम उस जल के समान है जिसे किसी रन्ध्र से उष्णता न मिलने पर बर्फ बन जाना पड़ता है और तब उसकी बही-बही फिरने वाली तरलता को हथोड़ों की चोट भी कठिनता से भंग कर पाती है।

सियारामशरण जी की जन्म तिथि भाद्र पूर्णिमा है जब आकाश अपनी बादलों की गीली जटाएं निचोड़ता रहता है और धरती वर्षा-मंगल के पर्व-स्नान में भींगती रहती है। नाटे कद, दुर्बल शरीर छोटे और कृश पर, लम्बे उलझे-रूखे से बाल, लम्बाई लिए सूखे मुख, ओठ और विशेष तरल आंखों के साथ सियाराम शरणजी ऐसे लगते थे मानो ठेठ भारतीय मिट्टी की बनी पकी कोई मूर्ति हो, जिसकी केवल आंखों में ही एक स्निग्ध तरलता है। कहीं कपड़ों का भार इस क्षीण शरीर से अधिक न हो जाए, शायद इसीलिए शरीर पर कम से कम वस्त्र धारण करते थे।

परिवार में केवल चारुशीला शरणजी को छोड़ कर सब इनसे बड़े हैं, फिर भी उन्हें सब का विश्वास एवं प्रेम प्राप्त हुआ। इनका शारीरिक स्वास्थ्य बाल्यावस्था से ही अच्छा नहीं रहता था, परन्तु वे कुशाग्र बुद्धि और जिज्ञासु कम नहीं थे। किशोर होते-होते इनका विवाह हो गया और तरुणावस्था में ही श्वांस-रोग ने इन्हें आ घेरा। इसके उपरान्त थोड़े-थोड़े समय के अन्तर से इनके कई बालक नहीं रहे, फिर पत्नी ने भी चिर-विदा लेली।

सन्तान–रहित होते हुए भी और विवाह योग्य होते हुए भी इन्होंने पुनः विवाह–सूत्र में बँधना स्वीकार नहीं किया। 'कदाचित अपनी बाल–संगिनी पत्नी को अपने हृदय का समस्त स्नेह ऐसी निष्ठा के साथ समर्पित किया था कि उसे लौटा लेना, दोनों लेने वाले देने वाले का अपमान बन जाता।

मिडिल पास करने के उपरान्त वे आगे न पढ़ सके परन्तु हाईस्कूल, इन्टर, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय आदि खाइयों के पार जो सरस्वती बैठी थी उसके चरण तक उन्होंने अपनी विनय पत्रिका बुद्धि के तीर में बाँधकर न जाने कैसे पहुँचा दी। उनके ऐसे ज्ञान भंडार को देखकर तो यही निर्णय करना पड़ता है कि इन खाइयों में वर्षों डूबते उतरते रहना व्यर्थ है।

'जैसे मूल्यवान विजातीय द्रव्य छिपाने वाला शरीर, आहत होने के अतिरिक्त और कोई महार्घता नहीं पाता, वैसे ही स्वभाव से अनमिल रहकर कोई उदात्त विचार या भाव हमारे मानसिक जगत को समृद्ध नहीं करता।' सियारामशरणजी ने इस सत्य को विचार जगत में ही नहीं व्यवहार जगत में भी परखा है। उन्होंने जिसे ग्रहण योग्य माना उसे अपने सम्पूर्ण अस्तित्व–निवेदन के साथ अंगीकार किया और जिसे अपने अस्तित्व में मिलाना उचित नहीं समझा उसके विशाल अस्तित्व-समर्पण को भी अस्वीकार किया।'

महात्मा गान्धीजी से उनका निकट का सम्पर्क रहा था और कवीन्द्र रवीन्द्र के साहित्य का उन्होंने गहन अध्ययन किया था। इसी से एक ओर वे महान कवि बने, दूसरी ओर महान साधक।

'अपने अग्रज की छाया को उन्होंने पूर्ण निष्ठा के साथ स्वीकार किया, पर उसके अन्तराल से आकाश पाने का ऐसा रन्ध्र निकाल लिया जिससे प्रत्येक प्रभात की किरण उन्हें नवीन कोण से स्पर्श करती है और प्रत्येक सन्ध्या नया रङ्ग डालती है। उनके विचार,

साहित्य, साधना में कहीं अनुकरण नहीं। कभी-कभी तो वे अति परिचित तथा अति साधारण वस्तुओं तथा घटनाओं का ऐसा वर्णन करते कि सुनने वाला विस्मित हो जाता।'

वे परिग्रह हीन हैं, उन्हें निरन्तर रोग से जूझना पड़ा है और वे सत्य के खोजी रहे हैं। ये तीनों ही परिस्थितियाँ ऐसी हैं जिनमें मनुष्य के कटु, विरक्त या उदासीन होने की सम्भावना रहती है, परन्तु सियारामशरण जी ने अपनी बाधाओं से संघर्ष कर ऐसी विजय प्राप्त की जैसी एक मूर्तिकार किसी अनगढ़ और कठिन शिला पर और एक गायक अनमिल स्वरों पर करता है।

वे पहले कवि हैं, फिर उपन्यासकार तथा निबन्धकार अतः कवि के सब वरदान उनके हैं। अस्वस्थ की वह खीझ जो कर्म-संकुल जीवन से उसके अलगाव की सूचना है, उनके पास कभी नहीं फटकी। उन्होंने सदैव जीवन के कोलाहल में बैठ कर रोग को चुनौती दी, इसी से उनकी सहानुभूति की सजलता में आत्मविश्वास की दीप्ति थी। उनकी उच्छल सरलता के नीचे जो दृढ़ता की चट्टान है उसका पता तो किसी मानसिक द्वन्द्व के अवसर पर ही चलता था। वे ऐसे पथिक थे जिनका ध्यान पथ के काँटों और पैर के चोटों की ओर न जाकर गन्तव्य में केन्द्रित रहे। जीवन के लक्ष्य को निकट लाने के लिए ही वे अपनी साँसों का प्रयोग करते रहे। ऊर्ध्वगामी होने के कारण वे सदैव हमारी दृष्टि का केन्द्र रहेंगे।

'उनका साहित्य पंक का कमल न होकर दुग्धोज्ज्वल चरित्र का स्वच्छ परिचय है।'



व्याख्या विभाग

प्रणाम

पृष्ठ १— सापेक्ष—जिसमें किसी की अपेक्षा हो, जो एक दूसरे पर अवलम्बित हो। सौरभ—सुगन्ध। व्याप्ति—विस्तार। कार्य और कारण में·········रूप दर्शन सम्भव नहीं होता— प्रायः कार्य और कारण एक दूसरे पर अवलम्बित होते हैं। कारण के बिना कार्य सम्भव नहीं और कार्य के अभाव में कारण का कोई अस्तित्व नहीं। परन्तु अनिवार्य नहीं कि उनके रूप में भी पूर्ण रूप से समानता हो। इन दोनों के रूप में असमानता इस नियम का अपवाद है। यथा आकाश मे बिजली का चमकना वर्षा का कारण हो सकता है परन्तु यह अनिवार्य नहीं कि बिजली की उन तीक्ष्ण और चमकती हुई रेखाओं में बादलो का विस्तार भी लक्षित हो। कहीं से सुगन्ध आती हुई जान कर कहा जा सकता है कि– फूल यहीं कहीं होगा, सुगन्धि इसी कारण आ रही है परन्तु उस सुगन्धि में फूल का रूप नहीं देखा जा सकता। अवज्ञा—अज्ञान। साम्य—समता। सौम्यता—स्निग्धता, उदारता, सौन्दर्य। रजत आलोक-मंडल—चाँदी के उज्ज्वल समूह के सदृश।

पृष्ठ २:— दीप्त—प्रकाशमय। लक्ष्य-पथ—दृष्टि-पथ। अथाह—गहरा। रहस्य कोश-सी आँखें—आँखों में मानो रहस्य का खजाना ही छिपा हुआ था। स्पर्श-मधुर—जिसका स्पर्श मधुर हो। परिधि—सीमा दुरलंघ्य—जिसे पार करना कठिन हो। जिसका अतिक्रमण या उल्लंघन दुष्कर हो। रश्मि-रेखा—प्रकाश की रेखा। निमिष–पलकों का गिरना, उतना समय जितना एक बार पलक गिरने में लगे।

पृष्ठ ३— जिज्ञासु—किसी वस्तु को जानने की जिज्ञासा रखने वाला, कुछ जानने का इच्छुक। कुतूहल—किसी व्यक्ति अथवा वस्तु

को देखने की उत्कट इच्छा, उत्सुकता। अशोभन—असुन्दर, अप्रिय। इतना अहंकार नहीं—वह मनुष्य होने का गर्व था, स्वाभिमान था, साधारण घमंड नहीं। अभ्यागत—अतिथि के रूप में आया हुआ। अडिग—कभी न हिलने वाली। रन्ध्रहीन—बिना किसी छेद वाली। निर्झर—झरना। आर्द्रता—गीला, तर, रस युक्त। थमना—रुक जाना। स्पर्शहीनता—स्पर्श के बिना ही। अनिर्वचनीय—जिसे कहा न जा सके, जिसे व्यक्त न किया जा सके। रहस्यमय—रहस्य से पूर्ण। सन्धि—दो वस्तुओं के मिलने का केन्द्र।

पृष्ठ ४— प्रखर दोपहरी—तेज दोपहरी। महान साहित्यकार अपनी कृति में········· कोई प्रश्न ही नहीं उठता—किसी भी साहित्य-कार की व्यक्तिगत विशेषताएं जानने के लिए उसकी रचनाओं का अध्ययन अनिवार्य है क्योंकि उसकी कृतियों में भी उसके व्यक्तित्व की छाप अवश्य रहती है। यदि हम उसके व्यक्तित्व की विशेषताओं को उसके साहित्य से अलग करके देखेंगे अथवा उसके जीवन के समस्त पहलुओं को अपने आप ही में एक साथ जोडनें का प्रयत्न करेंगे तो यह कष्टकारी ही सिद्ध होगा। यदि हम किसी महान लेखक की रचनाओं का अध्ययन करें तो उसकी व्यक्तिगत विशेषताएं स्वतः ही नप जाती हैं, और यदि उसके जीवन का अध्ययन करें तो उसके साहित्य की समीक्षा भी अनिवार्य रूप से हो जाती है। अर्थात उसके जीवन का परिचय होने पर इस बात का अनुमान लगा लेना असम्भव नहीं कि उसकी कृतियों की क्या विशेषताएँ होंगी। यथा घड़े के जल को घड़े के साथ ही तोला जा सकता है, यदि जल उसमें से निकाल लिया जाए तो उसके तोलने का प्रश्न ही नहीं उठता, वह तो जल के साथ स्वयं ही नप जाता है। इसी प्रकार साहित्यकार को उसकी रचनाओं से अलग कर दिया जाए तो उसके भी अस्तित्व-अनस्तित्व का प्रश्न नहीं उठता।

नहीं पुष्पित हुआ—लक्षित नहीं हुआ दिखाई नहीं दिया। दुग्धोज्ज्वल—दूध के समान उज्ज्वल।

पृष्ठ ५— सूत्र—क्रम। श्रोता—सुनने वाला। नितान्त—पूर्ण रूप से। आसक्ति—लगाव। अंचल—आँचल, कोना, किनारा, छोर। निरन्तर—लगातार। पर्वत-शिखर—पर्वत की चोटी। चिर विदा—मृत्यु। उपरान्त—पश्चात।

पृष्ठ ६— निर्बन्ध—बिना किसी बन्धन के। सृजन—निर्माण। सौजन्य—सज्जनता, उदाराशयता। अनुरूप—अनुसार। सजल—अश्रु पूर्ण। कृतज्ञ—किए हुए को मानने वाला। सम्बल हीन—जिसका कोई सहारा नहीं।

पृष्ठ ७— कल्पना-विहारी—कल्पना में विहार करने वाला। वात्सल्य—स्नेह पूर्ण। लोह निर्मित—लोहे का बना हुआ। पार्थिव—शरीर, सांसारिक। वैसे ही प्रायः पार्थिव व्यक्तित्व ...... अभाव का प्रमाण है—प्रायः किसी व्यक्ति की विशेषताएं सुनने के उपरान्त हमारी कल्पना उसी के अनुरूप एक प्रतिमा गढ़ लेती है और जब उसके शारीरिक व्यक्तित्व को देखने का अवसर मिलता है तो वह हमारी कल्पना द्वारा निर्मित उस मूर्ति को खंड-खड कर देता है क्योंकि हमारी कल्पना वास्तविकता की समानता नहीं कर पाती। परन्तु महादेवी जी की कल्पना ने कवीन्द्र रवीन्द्र की जो काल्पनिक प्रतिमा निर्मित की थी, वह उनके प्रत्यक्ष दर्शन के उपरान्त और भी सजीव बन गई, कहीं से खंडित नहीं हुई। फिर भी उनमें उत्सुकता का भाव था, क्योंकि वह उनकी बाल्यावस्था थी। सुयोग—सुअवसर। अर्थ संग्रह में यत्नशील—धन एकत्र करने में यत्नशील। विषाद—उदासी, गम, नैराश्य, उत्साह-हीनता।

पृष्ठ ८-९— विडम्बना—उपहास का विषय। आग्नेय—अग्नि

के समान । हिरण्य गर्भा धरती वाला ··············या सब कुछ बन चुका —इन पंक्तियों में समाज में फैले आर्थिक वैषम्य का मार्मिक चित्रण किया गया है । कितना विचित्र है हमारा यह देश । जिनको जीवन की कला के विषय में कुछ मालूम नहीं, जो इस हुनर से परिचित भी नहीं, उनके पास उस तक पहुँचने के लिए अपेक्षित उपायों का कोष प्रस्तुत कर देता है । परन्तु उससे क्या लाभ ? क्योंकि जिसे जीवन की क्षुधा मालूम नहीं वह उन साधनों का प्रयोग कैसे करेगा ? इसके विपरीत प्रकृति ने जिस मनुष्य को निर्माण-कला स्वयं प्रदान की है उसे वह उस स्थान पर छोड़ आता है जहाँ उद्देश्य प्राप्ति असम्भव है । कलाकार और कला को मिलाने वाले साधनों में अग्नि सदृश रेखा, जो अलंघ्य है, खींच कर यह कह दिया जाय कि वह असमर्थ है अथवा अब कुछ निर्माण के लिए शेष नहीं रह गया—तो इससे बड़ा सृजन का उपहास और क्या हो सकता है ? महादेवीजी का यह मर्मस्पर्शी चित्रण देखने योग्य है । इसका वर्णन करते समय उनका हृदय विषाद से पूर्ण हो उठा है ।

कल्पना के सम्पूर्ण मायावी संसार को······ ·· भ्रम उत्पन्न कर देता है —संसार की किसी भी वस्तु का काल्पनिक रूप हम अपने हृदय में बना सकते हैं परन्तु उस काल्पनिक रूप के एक छोटे से भाग का भी अपनी कल्पना के अनुरूप ही सुन्दर निर्माण करना सहज नहीं । क्योंकि सुन्दर वस्तु की कल्पना की सत्ता से किसी को कुछ हानी नहीं पहुँच सकती । इस लिए कोई उससे स्पर्धा अथवा द्वेष नहीं करेगा । परन्तु जब सुन्दर वस्तु का निर्माण हो जाए तो कोई असुन्दर वस्तु उसकी होड़ में नहीं ठहर सकती । वह उस असुन्दर वस्तु को हानी पहुँचाती है । अतः स्पर्धा अथवा द्वेष ही कला और कलाकार के रास्ते की बाधा बन जाता हैं । कभी-कभी तो स्थिति यहाँ तक पहुँच आती है कि हम

स्पर्श से यह आभास होने लगता है जैसे यही कलाकार का प्राप्य है, यही उसका निष्पाद्य है।

भावना ज्ञान और कर्म.........वैज्ञानिक या सुधारक नहीं हो पाता—कल्पना अथवा चिन्तन, ज्ञान तथा कर्म—इन तीनों का सम्मिश्रण जिस व्यक्ति में उपलब्ध हो,वह अपने युग को प्रवृत्त करने वाला साहित्यकार होता है। कोई व्यक्ति अपनी कल्पना में कितना ही मर्मस्पर्शी संस्कार निर्मित करले, अपने ज्ञान को नुतनतम बनाले या अपने व्यवहार में कोई नया लक्ष्य दे दे— ये सब अपने आप में अवश्य बड़े काम हैं। परन्तु जीवन तो इन सब का समन्वय से पूर्ण संयोग है। वह किसी एक में समा जाए अथवा दूसरे से अलग हो जाए—ऐसा सम्भव नहीं। भावनाएं, ज्ञान और कर्म ये तीनों ही अपने क्षेत्र में महत्वपूर्ण हो सकते हैं। बुद्धिवान व्यक्ति दार्शनिक हो सकता है। कर्म के क्षेत्र में सुधारक की प्राप्ति हो सकती है। हृदय का लक्ष्य संसार को कलाकार दे सकता है। परन्तु ये अलग-अलग लक्ष्य इन सबका सम्मिश्रित एवं सर्वश्रेष्ठ रूप नहीं दे सकते और जो इन तीनों क्षेत्रों को एक साथ स्पर्श करने की क्षमता रखता हो उसे उस युग का सम्पूर्णतया का प्रमाण मानना ही पड़ता है। यह समन्वय भी केवल साहित्य में ही सरलता से उपलब्ध हो सकता है, अन्य कही नहीं। यही कारण है कि मानव को समझने तथा उसके जीवन को वाणी देने में साहित्यकार की जो रुचि होती है, उतनी केवल दर्शन शास्त्र के ज्ञाता, वैज्ञानिक अथवा सुधारक की नही हो सकती। वही उसके साथ दूर तक चलने वाला साथी हो सकता है।

अभिषप्त—शापित, शापग्रस्त। संबल—सहारा।

पृष्ठ १० — क्षुद्र—तुच्छ। विच्छिन्न—विभक्त, अलग, जिसका अन्त किया जा चुका हो, काट कर अलग किया हुआ। गह्वर—दुर्गम, शोक विह्वल। प्रतिध्वनि—किसी शब्द का वह प्रति रूप जो उसके किसी

बाधक पदार्थ से टकराने पर उत्पन्न होता है और मूल शब्द के उपरान्त सुनाई देता है। विशालता—बड़ापन, विस्तार, व्याप्ति। शिवता—शिवपद, अमरता, मोक्ष, शिव सायुज्य। रासायनिक—तत्त्वविषयक प्रयोग।

पृष्ठ ११— प्रखर विद्युत—तेज बिजली का प्रकाश। आस्था—विश्वास। उद्भासित—व्यस्त, चमकता हुआ प्रकाशित। स्पन्दित—गतिशील। चिन्तन—कल्पना, भावना। कगार—किनारा, टीला। अतल—तलहीन, अथाह।

पृष्ठ १२— वैतालिक—स्तुति पाठक। अपराजेय—जिसे जीता न जा सके। आवृत्त—छिपा हुआ, ढँका हुआ। अभिनन्दन—स्वागत। भीमकाय—विशाल काय, डरावना, भय उपजाने वाला। भीषण—डरावना, भयानक। अथक—न थकने वाला। अन्वेषण—खोज करना।

पृष्ठ १३–१४— अवश्यम्भावी — जिसका होना निश्चत हो। महाप्रयाण—संसार से विदा लेना, मृत्यु। स्तब्ध—गतिहीन, संज्ञाहीन। आतंक—दहशत, भय, पीड़ा। विपुल—अगाध, प्रचुर, अधिक। पार्थिव—शरीर, सांसारिक। संग्रहित—एकत्र किए हुए। अग्रज—अगुआ। दीपक चाहे छोटा हो या बड़ा ....आने वाले को प्रणाम है—संध्या को सूर्य अस्त होने से पूर्व अपना कर्तव्य दीपक को सौंप कर चुप चाप डूब जाता है। दीपक उस कर्तव्य को निभाने में समर्थ है अथवा नहीं, इस बात का विचार वह नहीं करता। परन्तु उसके पश्चात दीपक स्वयं ही जलकर अपने अस्तित्व को स्थिर रखता है। यदि वह जल कर आलोक प्रदान नही करता तो उसके अस्तित्व का ही प्रश्न नहीं उठता। उस दीपक का आलोकित होकर उस कर्तव्य को निभाना ही अस्त होने वाले सूर्य को उसका प्रणाम है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी साहित्यकारों के छोर में साहित्य-परम्परा का उत्तराधिकार बाँध कर अनजाने में ही विदा ली। उनका इस कर्तव्य को निभाना ही, आने वाले को उनका प्रणाम है।

रेखाएँ

एक

पृष्ठ १७— अतीत—जो समय व्यतीत हो चुका है। धूमिल—मटमैला। कल्पना व्यायाम—परिश्रम। तीव्र इच्छा—उत्कट इच्छा। अनुष्ठान—प्रारम्भ करना। मुक्त हस्त—दानी, उदार। अलक्ष्य—जो दिखाई न दे सके।

पृष्ठ १८–१९— सहृदय—जो दूसरों के प्रति सहानुभूति रखता हो। शोध कार्य में लगी रहती थी—शब्दों को खोजने में लगी रहती थी। अहेर—आखेट, शिकार। मेघ बिना जल-वृष्टि भई है—बादलों के बिना वर्षा हुई है। जिज्ञासा—जानने की उत्सुकता। विधि-निषेध—प्रकृति-बाधक। धृतराष्ट्रता स्वीकार करना—असमर्थता स्वीकार करना परिधि—सीमा। बेगार—बे मन का काम। समस्या का लक्ष्य है—समस्या का बिन्दु है। हाथी न अपनी ······ हो सकती अहो !—स्वर्ग का वह बेगार हाथी यदि अपनी सूँड में जल भर कर नहीं लाता तो बताओ बादलों के बिना किस प्रकार जल बरस सकता ? विस्मय—आश्चर्य।

पृष्ठ २०–२१— दीर्घकालीन—विस्तृत, लम्बा। गेहुँआ—गंदमी गेहूँ के समान रंग का। ललाट—माथा। क्रूर—निर्दय, मनहूस, मिथ्या कुंचन—सिकुड़ना, टेढ़ा होना, सिमटना। असहिष्णुता—क्रोधी, झगड़ालु चिड़चिड़ा। निष्ठुरता—कठोर, निर्दय, कड़े दिल का। वक्रता—टेढ़ा, तिरछा। जब हमारी दृष्टि में प्रसार ······ आवश्यकता रहती है—जब हमारी दृष्टि में अत्यधिक फैलाव होता है तो उसे किसी एक स्थान विशेष में एकत्री-भूत करना असम्भव होता है। वरन् हमारी दृष्टि विहंग के समान एक ही स्थान पर, एक साथ अनेक को स्पर्श करने

में समर्थ होती है परिणामस्वरूप हमारा ज्ञान तीव्रता से बढ़ने लगता है और जैसे-जैसे ज्ञान की सीमा बढ़ती है, जिन विषयों से हमारी दृष्टि भली-भाँति परिचित हो जाती है, उन विषयों का महत्त्व हमारी दृष्टि में कम हो जाता है। इसके विपरीत जब हमारी हँसी में बन्धन रहित विस्तार नहीं होता अर्थात् वह संकुचित होती है, तब हम हवा के झोंके के समान उस हँसी का सुख देने वाला स्पर्श सब तक पहुँचाने में असमर्थ रहते हैं। ऐसी अवस्था में हमारे हँसी-मजाक कुछ व्यक्तियों को ही अपना मुख्य बिन्दु बना कर सीमित हो जाते हैं। कलाकार की दृष्टि में यह विस्तार अनिवार्य रूप से होना चाहिए। उसकी दृष्टि एक, एक पर ठहर कर सबको अपना परिचय देती है उसकी मुक्त हँसी सबको एक साथ सुखद स्पर्श देकर सबसे मैत्री का अनुभव करती है। साहित्य और कला में तो इस मैत्री तथा परिचय की प्रत्येक पग पर आवश्यकता रहती है क्योंकि साहित्य में जीवन के आदान प्रदान का बहुत महत्त्व है और वह इस आत्मीयता के अभाव में असम्भव है। आलोक—प्रकाश। सतह—वस्तु का ऊपरी भाग तल। तटस्थ—उदासीन, निकटस्थ। विवेक—यथार्थ ज्ञान, विचार।

पृष्ठ २२— केवल विनोदी व्यक्ति की दृष्टि······ कुछ नहीं है—जो व्यक्ति केवल क्रीड़ा शील हैं, उसकी दृष्टि इतनी तीक्ष्ण नहीं हो सकती कि वह जीवन के बाहरी आवरणों को भेद कर यथार्थता जानने की क्षमता रखता हो, सत्य को जान लेना उसके लिए कठिन होता है परन्तु यदि वह विनोदी होने के साथ-साथ कवि हृदय भी रखता है तो यह तीक्ष्णता अनिवार्य है। इसी लिए कलाकार बाह्य रूप से तो विनोदी होता है परन्तु उसके इस विनोदी स्वभाव की स्पष्टता के साथ-साथ एक प्रकार की क्लिष्टता भी रहती है, उसे शीघ्र नहीं समझा जा सकता। यदि ऐसा न होता, वह जीवन को मात्र कुतूहल

अथवा हास्य-विनोद के कुछ न समझता तो जीवन में फैली असमानता के प्रति वह असह्य न होता। उसे यदि जीवन से सन्तोष होता तो यह समानता की भावना न अनिवार्य रहती, न ही अत्युष्ण। और साहित्य में यदि इस समन्वय की आवाज़ नहीं तो वह मात्र वर्णन के और कुछ नहीं। परन्तु, ऐसा नहीं है। कलाकार जीवन में फैली विषमता को कदापि सहन नहीं कर सकता और वह अनिवार्यतः सामंजस्य की भावना का समर्थक होता है, जिसकी साहित्य में भी पग-पग पर आवश्यकता होती है। लोक संग्रही—जो लोक हित की भावना को लेकर चलता है। उषःकाल—प्रारम्भिक काल। गन्तव्य—जाने योग्य, गम्य। प्रतिष्ठा—सम्मान, मान मर्यादा, ख्याति, प्रसिद्धि।

पृष्ठ २३-२४— धरोहर—अमानत। यदि हम लोहे के एक सिरे को पानी में········· मूल रूपों में ही रहेंगे—यदि हम लोहे की सलाख के एक ऊपर के हिस्से को आग में रख दें और दूसरे किनारे को पानी में डुबो दे तो एक तरफ से आग की गर्मी और दूसरी तरफ से पानी की शीतलता मध्य में आकर जब मिलेंगी तो दोनो एक दूसरे से प्रभावित होगी। जल की शीतलता कुछ उष्णता को कम कर देगी और आग की गर्मी जल को कुछ गर्म कर देगी। आग और पानी का मध्य में आकर एक सन्तुलन तो उत्पन्न हो जाएगा, तथापि दोनों किनारों पर तो आग की उष्णता भी वही रहेगी और जल की शीतलता में भी कोई अन्तर नहीं आएगा।

जब आज भी हमारा शिक्षा यंत्र··········फूल को आलोक की होती है —जब आज भी हमारे यहाँ की शिक्षा विद्यार्थी के व्यक्तित्व को तोड़-मरोड़ कर एक पक्षीय बना देती है तब आज से ६० वर्ष पूर्व क्या स्थिति होगी इस का अनुमान लगा लेना कठिन नहीं। गणित के अंको के समान चलने में भी फुट-इञ्च नाप कर यदि कदम रखे जाएंगे तो

इस सावधानी से न तो रास्ता पार किया जा सकता है और न ही कोई चलना सीख सकता है। जिस प्रकार किसी बीमार व्यक्ति को नाप-तोल कर औषधि दी जाती है, उसी प्रकार निरोग व्यक्ति को उसी तौल से खाना नहीं दिया जाता क्योंकि रोगी व्यक्ति को तो रोग से बचाने का उपाय करना है इस लिए उसे औषधि एक निश्चित मात्रा में ही दी जानी चाहिए और दूसरा तो निरोग है ही। ज्ञान की प्राप्ति कलाकार के लिए भी अन्य मनुष्यों के समान अपेक्षित है परन्तु उसमें कुछ विशिष्टता होनी होनी चाहिए। जिस प्रकार फूल अनायास ही कली में से फूटकर दृष्टिगत होता है, अचानक ही उसे प्रकाश की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार कलाकार को भी ज्ञान की प्राप्ति अनायास ही होनी चाहिए। शिव तांडव—शिव का प्रसिद्ध नृत्य। प्रश्न की कल्पना साधारण ... .नहीं रहने देंगे—कक्षा में एक साधारण बालक के ज्ञान की सीमा में नवीन प्रश्न की कल्पना असम्भव रहती है। अध्यापक जिस प्रश्न पर सकेत करता है, वह तो उसी से अपने सीमित ज्ञान के सहारे छुट–पुट प्रश्न बनाने मे समर्थ होता है, नवीन प्रश्न की उद्भावना उसके लिए सम्भव नही होती। जिस प्रकार पोखर में से केवल शङ्ख अथवा घोंघा ही उपलब्ध हो सकते हैं, उसी प्रकार शिक्षक के बताए प्रश्न से अपने ज्ञान के सहारे उसी से सम्बन्धित प्रश्न ही बन सकते है और ऐसा विद्यार्थी जब अध्यापक के ज्ञान रूपी समुद्र मे गोता लगा कर किसी नवीन प्रश्न रूपी मोतीदार सीप को ढूँढ लाने मे समर्थ हो तो समझना चाहिए कि उसके मस्तिष्क में कुछ भिन्न वर्ग के कण है जो उसे अवश्य महान बनाने में सहायक होंगे।

पृष्ठ २५–२६—तिलक कँठी धारी—वैष्णव कवि। पर जीवन—दूसरों का जीवन। अवैध—अनुचित। उत्तीर्ण होना—सफल होना। विधुर—पत्नी से वँचित। घीसा—रगड। आवृतियाँ— बार–बार,

किसी वस्तु की आवृत्ति । दीप्ती—रोशनी, प्रकाश, आलोक । भक्त और कवि के दृष्टि-बिन्दुओं में ·· ·· ·· ·· अपनी कल्पना के अनुरूप चाहता है—भक्त और कवि दोनों के लक्ष्यों में अनिवार्यतः अन्तर रहता है। भक्त जिसकी अराधना करता है, उसी में सम्पूर्ण विश्व की छाया देखता है । जो उसे मिलता है उसी में सन्तुष्ट रहता है क्योंकि यदि वह अपनी उपलब्धियों को नापे–तोलेगा तो यह विचार उसे भक्त नहीं रहने दगे। उसकी भक्ति एक व्यापार का रूप धारण कर लेगी। इसके विपरीत कवि की विशेषता यह नहीं है । उसके लिए सम्पूर्ण विश्व ही इष्ट है अपने इष्ट में सम्पूर्ण संसार को न देख वह सम्पूर्ण विश्व को ही अपना इष्ट मानता है । दूसरे की दी हुई वस्तु को शान्त भाव से स्वीकार कर लेना उसका अभिप्रेत नहीं । यह उसे प्रिय नहीं । अपने इष्ट–सम्पूर्ण विश्व का सृजन भी वह अपनी कल्पना के अनुसार चाहता है, जो है वही उसे अभीष्ठ नहीं होता । पत्थर को तिल-तिल तराश कर ················ भाव का रूप में विलयन—पत्थर को धीरे–धीरे घिस कर उसे अपने चिन्तन के अनुरूप आकार देना और उस आकार को अपनी भावना की सीमा मान लेना–दोनों बातें एक ही मनुष्य के स्वभाव में असम्भव हैं । कलाकार तो अपनी कल्पना के अनुरूप ही मूर्त्ति का आकार देने में अपनी सफलता समझता है और दूसरी तरफ उस मूर्ति में अपने आप को समाहित कर लेने में ही भक्त अपने को पूर्ण काम मानता है । एक ओर तो जो अनस्तित्व है, जिसका अभाव है, उसे अपनी कल्पना से रूप–आकार में परिणत किया जाता है और दूसरी तरफ जिसका अस्तित्व है जिसका निर्माण हो चुका है उसमें अपने को विलयन किया जाता है । अर्थात मूर्तिकार तो अपनी कल्पना से मूर्ति का निर्माण करता है और अपने को उस मूर्ति में, जिसका सृजन किया जा चुका है, उसमें अपने को विलीन कर देता है ।

लोक हृदय में प्रतिष्ठा पा चुकी हो—जनता के हृदय में अपना स्थान बना चुकी हो। मेरु दण्ड—आधार।

पृष्ठ २७— आदान—लेना। निर्माण—सृजन। दुर्वह—जिसे वहन करना कठिन हो। स्वार्जित—स्वयं अर्जित की हुई। विनीत—विनम्र। अर्थ-दम्भी—धन के घमण्डी।

पृष्ठ २८— याचक माँगने वाला, भिखारी। अवज्ञा—अवहेलना, तिरस्कार। विस्फोट—फटना, फूट पड़ना। यदि मिट्टी को प्रतिबिम्ब ग्रहण— ....अब तक गूँजती होती—यदि मिट्टी को यह वरदान प्राप्त होता कि किसी वस्तु की छाया उस पर पड़ने से वह उसकी प्रतिच्छाया ग्रहण कर सके तो कवि—आगमन की उग्रता आज भी उस कमरे की दिवारों पर चित्रित होती। परन्तु मिट्टी प्रतिच्छाया को ग्रहण नहीं कर सकती अतः यह आज सम्भव नहीं है। स्वर एक बार ध्वनित होकर विलीन हो जाता है, यदि, उसे इस प्रकार मिटने का अभिषाप न मिला होता तो आज भी उस वातावरण में निर्वेद में रौद्र रस की ध्वनि की आवृत्ति को सुना जा सकता। किन्तु स्वर को भी मिटने का अभिषाप मिला हुआ है अतः उस ध्वनि की आवृत्ति नहीं हो सकती।

पृष्ठ २९— अभियान—आक्रमण, चढ़ाई। विग्रह—रूप, खण्ड। गोपनशास्त्र—किसी बात को छिपाने की विद्या। स्फीत—घना, बहुत अधिक, बढ़ा हुआ। मन्त्रणा—सलाह। अनुमोदन—समर्थन, स्वीकृति। निरुत्तर—उत्तर न सकना।

पृष्ठ ३०— आशय—तात्पर्य। क्रय-विक्रय—खरीदना-बेचना। छोर—किनारा। अतिरंजना—अतिशयोक्ति। साधारणतः व्यवसाय की नीति में..........सन्तुलन आ ही जाता है—प्रायः व्यापार में वस्तु बेचने वाला और खरीदने वाला दोनों ही भिन्न विचारों से चलते है।

वस्तु खरीदने वाला इस बात का इच्छुक होता है कि उसे कम से कम मूल्य में वह वस्तु मिलजाए अतः वह अपने अभिप्राय: की पूर्ति के लिए उसमें अनेक दोषों का आरोप कर देता है, दूसरी ओर विक्रय-कर्ता अपनी वस्तु को अधिक से अधिक मूल्य में बेचना चाहता है, इसलिए वह उसमें अनेक गुण आरोपित करने लगता है। परन्तु इन दोनों सीमाओं के मध्य की स्थिति आने पर ही कोई वस्तु खरीदी अथवा बेची जा सकती है अतः कुछ दोष खरीदार को कम करने पड़ते हैं और कुछ विक्रयकर्ता को गुण। तभी इन दोनों स्थितियों की अतिशयोक्ति में संतुलन आता है और वस्तु का क्रय विक्रय भी इसी स्थिति में हो सकता है। ऊसर—वह जमीन जिसमें रेत हो और कुछ पैदा न हो।

पृष्ठ ३१-३२—हिचकिचाहट—झिझक। भ्रम—संदेह। विचलित—अस्थिर, चंचल। बन्दीगृह का अतिथि बनाया—कारावास का दण्ड दिया। जेल का कलेक्टर—जेल का अधिकारी। खिलाफ मे—विरोध में। अभ्यर्थना—स्वागत, अगवानी। संवेदनशीलता— ज्ञानशीलता, अनुभूति प्रधानता। तादात्मय—अभिन्नता।

पृष्ठ ३३— तत्पर सहकर्मा—जो कार्य में लगा हुआ हो। परिहार—निराकरण, खण्डन। किसी मृतवत्सा माता की वेदना······ ···· 'अब इसे तुम्हारे अंचल की छाया चाहिए'—जिस माँ का बेटा मृत्यु की गोद में सो चुका हो उसकी व्यथा को कलाकार मूर्ति में स्थापित कर देगा। वह वैसे ही व्यथा पूर्ण भावों को पत्थर में स्थापित कर उस वेदना से तादात्मय कर लेगा। चित्रकार उसी व्यथा को रेखाओं मे बाँध कर अभिव्यक्त कर देगा। कवि उसके दुख की अभिव्यक्ति काव्य से कर देगा। संगीतज्ञ उस वियोग को राग के रूप में गाकर व्यक्त कर देगा। परन्तु इन सब अभिव्यक्तियों से उसकी व्यथा तो कम नहीं हो

जाएगी। उसे तो सहानुभूति का वह रूप चाहिए जो उसके अभाव को भर सके।

वह उस मूर्तिकार से भी अपरिचित है जिसने उसकी वेदना को पत्थर में साकार किया, उस संगीतकार को भी नहीं पहचानती जिसने उसके दुःख को राग में पाया, इन सबने तो केवल उसकी वेदना से ही तादात्म्य किया है, परन्तु जो पड़ोसी उसकी खाली गोद में एक दूसरा धूल भरा बालक रख देता है और कहता है "अब इसे तुम्हारे स्नेह की आवश्यकता है", वह मृतवत्सा माता तो उसे ही पहचानती है।

पृष्ठ ३४-३५— भ्रांति—भ्रम। साम्य—समानता। विराजमान होंगे—आसीन होंगे। संदिग्ध अपराधी—जिन पर अपराध करने का सन्देह किया गया हो। हिफाजत—सुरक्षा। अभिवादन—प्रणाम। निरीक्षण—जांच-पड़ताल। मनोव्यथा—मन की व्याकुलता।

पृष्ठ ३६-३७— आस्था—विश्वास, श्रद्धा, आशा। सतर्कता—तर्क कुशलता, विवेकशीलता। हीनता—अभाव। ग्रन्थि—गुत्थी, गाँठ, गिरह। अंगार पथ—कठिन मार्ग। पूर्ण काम—जिसने सिद्धि प्राप्त कर ली है। अर्पित हो ··········· बहुजन सुखाय—मेरा यह मनुष्य शरीर सृष्टि के हित के लिए, तथा सृष्टि के सुख के लिए अर्पित है।



दो

पृष्ठ ३८— शैशव कालीन—बाल्यावस्था। लक्षित होने लगता है—दिखाई देने लगता है। समय का प्रवाह—समय का अटूट क्रम, समय का बहाव। रागात्मक—प्रेम का सम्बन्ध। वार्धक्य—वृद्धा अवस्था। सख्य—सखी।

पृष्ठ ३९— अनविकार—अविकार रहित। वक्रकुंचित— टेढ़ी, तिरछी, सिकुड़ी हुई। कटुतिक्त—कड़वा, अप्रिय। बीहड़ — बिकट, ऊबड़-खाबड़।

पृष्ठ ४१-४२— भ्रान्त बुद्धि— कमजोर बुद्धि। प्रकृति दत्त—प्रकृति की देन। धार गोठिल कर रहा है— धार मन्द कर रहा है, कुन्द कर रहा है। 'संचारिणी दीपशिखेव'— दीपशिखा के समान संचरित करने वाली। देहयष्टि—देह का समूह। उग्र—प्रचण्ड। रौद्र—कोप को जाग्रत करने वाला। भवस्नात—भाव से परिपूर्ण। निश्छल—छल से रहित। गोधूलि बेला—सन्ध्या बेला।

पृष्ठ ४२-४३— लक्ष्य-पथ—दृष्टि मार्ग। अडिग रहना—स्थिर रहना। मंगल-कंकण—शुभ विवाह का सूत्र, विवाह से पूर्व वर-कन्या के हाथ में बाँधा जाने वाला धागा। रण-कंकण—संघर्ष का सूत्र, युद्ध से पूर्व बाँधा जाने वाला सूत्र जो सफलता के लिए होता है। आह्वान—निमन्त्रण। पुष्प शैया—फूलों की सेज। संयत—दमित, सयम, व्यवस्थित। अनुकूल—मेल रखने वाला, सहायक।

पृष्ठ ४४-४५— तन्मयता—तल्लीनता। सग्रहित—संकलित। अनाहूत—बिना बुलाया, अनिमंत्रित। क्षत-विक्षत—क्षीण। नारी के हृदय में जो गम्भीर ·· ·· ·· अपनी सृष्टि के मङ्गल की कामना करती है—नारी के हृदय में जो गहन, अश्रुपूर्ण ममत्व से युक्त वीरता

का भाव है वह पुरुष की प्रचण्ड वीरता से कहीं अधिक दिव्य है, दीप्ति युक्त है। पुरुष अपनी इस वीरता का प्रयोग अपने तथा अपनी जाति के रागद्वेष के लिए भी कर सकता और इसलिए भी कि वह मात्र अपनी वीरता का प्रदर्शन करना चाहता है। अपने इस अहं की तृप्ति के लिए भी वह अपनी वीरता का प्रयोग करता है कि– वह बलशाली है। परन्तु इसके विपरीत नारी अपने उस स्नेह से पूर्ण वीर भाव का केवल अपने निर्माण की बाधाएँ दूर करने के लिए अथवा कल्याण के लिए ही प्रयोग करती है। वह यदि रुद्र भी बनती है तो उसमें भी सृष्टि के कल्याण की भावना ही निहित होती है, अतः संसार की कोई भी प्रेरणा उसकी इस वीर-भावना की समानता नहीं कर सकती। प्रेरणा का जो भाव इस दिव्य वीर भावना में उपलब्ध होता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। ममत्व शक्ति का भव्य, रक्षा करने वाला एवं उद्धार करने वाला एक रूप है– विशाल आकृति वाली चंडी माँ का, जो कि समस्त पाशविक तथा हिंसात्मक शक्तियों को अपने पैरों के नीचे कुचल कर, उनका नाश कर अपनी सृष्टि के मङ्गल के लिए उपासना करती है। उत्स—स्त्रोत। निष्ठा—विश्वास, अनुराग।

पृष्ठ ४६–४७—सुख भरे सुनहले ·· ·· ·· जीवन के साथी मेरे—सुभद्राकुमारी चौहान ने जीवन के प्रति ममता से पूर्ण विश्वास को ही काव्य का प्राण माना था। वह तो कहती थीं सुख से पूर्ण स्वर्णिम मेघ मुझे सदैव घेरे रहते हैं और विश्वास प्रेम एवं साहस को तो मैंने अपने जीवन साथी के रूप में स्वीकार किया है।

मधुमक्षिका जैसे कमल से ·· ·· ·· ·· सुभद्रा जी का था—जिस प्रकार मधु मक्खी कमल से लेकर कंटकारी तक तथा रसाल से लेकर आक तक सब मधुर और कड़वा रस एकत्र करके अपनी शक्ति से उसे

'शहद' बना देती है वैसा ही कुछ आदान-प्रदान सुभद्रा जी का था। वे भी कोमल, कठिन सहने योग्य न सहने योग्य सभी प्रकार के भावों को एकत्र करके, इन सबसे प्राप्त हुए अपने अनुभवों का एक समिश्रित रूप में जो निष्कर्ष निकालतीं, वह दूसरों के लिए ही होता था। झकझोर—जोर से झटका देना। सृजन—निर्माण।

पृष्ठ ४८— अनुगामिनी— पुरुष का अनुगमन करने वाली स्त्री। अर्धाङ्गिनी—पुरुष के आधे अङ्ग के रूप में। अकरणीय— जिसे न किया जा सके।

पृष्ठ ४९— संकीर्ण—विकृत, संकुचित, तङ्ग। मूक भाव से—मौनता से। विश्व बन्द्य — विश्व जिसकी बन्दना करता है। क्षुब्ध—अशाँत, उत्तेजित।

पृष्ठ ५०–५१— सख्य—सखी भाव। अनायास — अचानक विचरिअऊ—विचारी। मेरे निमित्त—मेरे लिए।

पृष्ठ ५२–५३— स्पर्धा— प्रतियोगिता, होड़, ईर्ष्या, चुनौती। पुष्पाभरण—पुष्पों का भरण-पोषण करने वाली। आलोक वसना—जहां सदैव आलोक का निवास है, प्रकाशमय। यही कहीं ·· ··· ·· माला सी—टूटी हुई विजय माला के समान वह भी यहीं कहीं पर बिखर गई। माला के टूट जाने से उसके मोती इधर-उधर बिखर जाते है। उसी प्रकार उनके पार्थिव के छिन्न हो जाने से वे भी इधर-उधर बिखरी हुई दिखाई देती हैं।



तीन

पृष्ठ ५४— बन्धन शून्य—बन्धन रहित। भुक्खर—कंगाल, जिसके पास कुछ न हो। अर्चना—वन्दना, पूजना। स्वेद विन्दु—पसीने की बून्दे। बवन्डर—अंधड़, बगूला।

पृष्ठ ५५— उच्छल—तरंगित। निधि—खजाना। द्विविधा—उलझन। चित्राधार—चित्रपट, चित्र रखने का स्थान। निर्बन्ध—बन्धन-रहित। दुष्कर—कठिन। रस्साकशी—खींचतान।

पृष्ठ ५६-५७— अनुतीर्ण — असफल। नापित—हज्जाम। दिवंगत—स्वर्गीय। श्रद्धेय—श्रद्धा योग्य। कक्ष—कमरा। मूक साक्षी—मौन गवाह। आले पर कपड़े की आधी जली·· ·······प्रतीक्षा की कहानी सुना सकता — निरालाजी की कठोर साधना के मूक गवाह उस कमरे में ताक पर एक दिया रखा था जिसमें तेल समाप्त हो चुका था और कपडे की आधी जली बत्ती पडी थी। वह दिया अपने नाम के महत्व के लिए, उसके नाम का भी कुछ उपयोग है इसे सिद्ध करने के लिए ही मानो जलने का प्रयत्न कर रहा था। यदि उसका वह प्रयास बोलने की क्षमता रखता, यदि उसे स्वर का वरदान मिला होता तो वह निश्चय ही अपने स्वामी की लम्बी परन्तु असफल प्रतीक्षा की कहानी कह सकता। वह यह सुनाने मे समर्थ होता कि उसमें जो तेल डाला जाता है उसे लाने के लिए उसके गृह स्वामी को मिट्टी के तेल की दूकान पर लगी भीड मे सबसे पीछे खड़े होकर प्रतीक्षा करनी पडती है परन्तु वह प्रतीक्षा भी निष्फल रहती है। औंधी पडी हुई—उलटी पड़ी हुई। बटलोई—पतीली, स्थाली, चावल दाल आदि पकाने के काम आने वाली। सुख-सुविधा-शून्य—किसी प्रकार की सुख सुविधा से हीन। प्रहरी—पहरेदार।

पृष्ठ ५८— विद्रोही—क्रान्तिकारी। अकस्मात—अचानक।

सहर्ष—प्रसन्नता से । अतिथि पूजा के पर्व कम ही आते हैं— अतिथि का स्वागत करने के अवसर कम ही आते हैं । क्षौर—हजामत बनाना । गृहपति—गृहस्वामी । अबाध—बाधा रहित । छिछला—उथला ।

पृष्ठ ५९— सघनता—घना, निबिड़ता । घटित—जो हुआ है । अघटित—जो नहीं हुआ है । पाषाण—पत्थर । प्रतिमा— मूर्ति । सान्त्वना—धीरज । निस्तब्ध—विशेष रूप से स्तब्ध । अखरना—खलना, बुरा लगना, कठिन या कष्टप्रद जान पड़ना ।

पृष्ठ ६०— सौहार्द—सद्भाव, मैत्री । बेध कर—छेद कर । प्रायः एक स्पर्धा का तार ·· ·· ·· ·· अनुभूति नहीं देता— प्रायः हमारे सद्भाव तथा मैत्री के फूल एक विरोधी तार में पिरोए हुए, एकत्र रहते हैं । जब फूल उस तार से झड़ जाते हैं अथवा गिर जाते हैं तो केवल वह स्पर्धा का तार ही शेष रह जाता है । इसी लिए किसी साथी का वियोग हो जाने से हमें इतनी गहन ठेस नहीं पहुँचती । साथी के बिछुड़ जाने से अकेलेपन का अनुभव इसी कारण नहीं होता । विकल—व्याकुल । क्लान्त थका हुआ, श्रान्त मुरझाया हुआ । उत्तरीय—ओढ़नी, उपरना ।

पृष्ठ ६१–६२— अँगराज—लेप, उबटन । निर्मम—निर्दय । जिस प्रकार प्राप्ति हमारी ·· ·· ··· ·· दोनों कितने भिन्न हैं— कुछ प्राप्त होने से मनुष्य सन्तुष्ट होता है अपने को कृत कार्य समझता है, उसी प्रकार कुछ त्याग के फलस्वरूप वह अपने को पूर्ण काम मान लेता है । प्राप्ति मनुष्य के पार्थिव विकास की सूचक है और त्याग उसके मानसिक विकास की सीमा बनाता है । जो प्राप्त हो चुका है, त्याग कभी उसे अस्वीकार करता है और कभी, जो नहीं मिला उसे ही स्वीकार कर लेता है अर्थात् अभाव को ही त्याग मान लेता है परन्तु वास्तव में दोनों अभिन्न नहीं हैं । अनुताप—रंज,

पछतावा, खेद। गेरु—खानों से निकलने वाली लाल मिट्टी जो कपड़ा रङ्गने और दवा के काम भी आती है। परिधान— वस्त्र।

पृष्ठ ६३— अक्षुण्ण—अखण्डित, अभग्न। सन्धि—दो वस्तुओं का मिलना। उनकी दृष्टि में ·· ·· ·· द्वाभा है— दर्प और विश्वास दोनों की आभा उनमें इस प्रकार मिली हुई थी जैसे धूप और छाया। अविराम—लगातार। आत्मनिष्ठा—आत्म विश्वास। दुर्वह—जिसका वहन करना कठिन हो। पैनापन—तीक्ष्णता। बेधना—छेद करना, घाव करना।

पृष्ठ ६४–६६— गूढ़तम — गहन से गहन। जो कलाकार हृदय के ···· ········ ··· यह स्वाभाविक साधन है — हृदय के गहन से गहन भावों का विश्लेषण करने की सरलता सांसारिक दृष्टिकोण से आश्चर्य का विषय हो सकती है परन्तु कला के सृजन के लिए यह विशेषता स्वाभाविक उपकरण सिद्ध होता है। प्रहार—वार। घृणा का भाव मनुष्य की असमर्थता का ·········घृणा भी सम्भव नहीं—जो मनुष्य कोई वस्तु पाने में असमर्थ होता है तो उसमें घृणा की भावना उत्पन्न होती है क्योंकि जिस वस्तु को वह अपनी इच्छा के अनुसार निर्माण कर सकता उस वस्तु के प्रति घृणा का अवसर ही नहीं आता इसके विपरीत जिससे वह भयभीत है और उससे बचने का प्रयत्न भी करता है, उससे अपनी रक्षा के लिए वह जागरूक है, तो उस वस्तु की ही स्थिति उस के लिए घृणा का बिन्दु बन जाती है यथा जो व्यक्ति मदिरा-पान कर सकता है, उस पात्र को तोड़ कर फेंक सकता है, उसे मदिरा से घृणा कैसे हो सकती है, घृणा तो वह करेगा जो उससे बचने का प्रयत्न करता है। मदिरा सामने रखी हो परन्तु उसके मन में यह विचार भी हो कि इसका पान करना हानिकारक है इसलिए इससे अपनी रक्षा के लिए सतर्क रहना अनिवार्य है तो वह मदिरा के दोषों

की एक–एक ईंट अपने मन में संचित कर लेता है और उस पर घृणा का काला रंग फेर कर एक दीवार खड़ी कर देता है जिसके सहारे वह उससे बच सके। यदि वह उससे घृणा नहीं करेगा, उसमें गुण ही गुण देखेगा उसे पीने में समर्थ होगा, तो उससे घृणा भी सम्भव नहीं। इसी प्रकार मनुष्य नरक से भी भयभीत रहता है उसकी कल्पना से भी वह बचना चाहता है, इसलिए उसके प्रति उसमें घृणा का भाव रहता है। जहाँ दोषों का संरक्षण नहीं किया जाता, वहाँ घृणा सुरक्षित नहीं रह सकती। संचितकर—संग्रहकर। झंझा —आँधी। मन्द समीर—धीरे धीरे चलने वाली समीर। ढोता फिरता है — वहन करता है। संचय वृत्ति — संग्रह करने की भावना।

पृष्ठ ९९— संकल्प—दृढ़ विचार, प्रतिज्ञा। औचित्य—उपयुक्तता, उचित। बौद्धिकता—बुद्धिमानता, बुद्धि का सहारा। संवेदन शीलता—भाव शीलता। भ्रान्त—संदेह पूर्ण।

पृष्ठ ९७— मनुष्य जाति की ना समझी का इतिहास········ नए पृष्ठ जोड़े हैं—मनुष्य जाति की बुद्धिहीनता का इतिहास दीर्घ तथा निर्दयता से पूर्ण है। प्रायः प्रत्येक युग में ऐसा हुआ है कि मनुष्य ने उस युग श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ व्यक्ति को जिसे समझना उसकी बुद्धि से बाहर रहा है– उनके साथ असभ्य व्यवहार किया है। उसे कभी विष देकर, कभी फाँसी पर चढ़ा कर और कभी गोली का निशाना बना मनुष्य ने असभ्यता तथा मूर्खता के इतिहास में नए पृष्ठ जोड़ कर उसे और लम्बा किया है।

प्रकृति और चेतना न जाने ······· मेल नहीं खाता—श्रेष्ठतम व्यक्तियों का निर्माण प्रकृति तथा चेतना न जाने कितने कठिन प्रयासों के उपरान्त कर पाती है। ऐसे मनुष्य स्वयं उसके निर्माता से भी श्रेष्ठ

होते हैं। परन्तु उसकी जाति के ही लोग ऐसे अद्भुत निर्माण को नष्ट करने के लिए यही कारण प्रस्तुत करते हैं कि ऐसे मनुष्य उनकी समझ में नहीं आ सकते, अथवा उनका सत्य इनकी भ्रान्तपूर्ण भावनाओं के अनुकूल नहीं है। लौहसार—दृढ़। साहचर्य—साथ होना। शैशव—बाल्यावस्था। निरुपाय—साधनहीन। उपेक्षा—अवज्ञा, जिसकी अपेक्षा न हो।

पृष्ठ ६८— एकनिष्ठता—एक के ऊपर ही श्रद्धा, अथवा अनुराग रखने वाला अनन्योपासक। व्यूह—समूह, रचना। विषाक्त—विषपूर्ण। दंशन—काटने या डंक मारने की क्रिया। सतत—निरन्तर। अकूल—जिसका कोई किनारा न हो। दुर्लभ—अलभ्य, जिसकी प्राप्ति सहज न हो।

पृष्ठ ६९–७०— गुरुता—बड़ापन। पदत्राण—जूता, खड़ाऊँ। दम्भ—दर्प। उर्वर—उपजाऊ। इतिवृत्त—वर्णन। स्पर्धा—द्वेष की भावना। प्रतिकृति—प्रतिरूप,प्रतिबिम्ब। संसृति—आवागमन, सातत्य, प्रवाह, संगति। शूल—काँटे।



चार

पृष्ठ ७१— ढाल—आगे की ओर क्रमश: नीची होती गई जमीन, उतार। हिम—बर्फ, शीत, ठण्डक । आतप—धूप, गरमी । हिमपात—पाले का पड़ना, ओले का गिरना। प्रखर धूप—तेज गरमी। मूसलाधार—मोटी धार से बड़ी बड़ी बूँदों से मेंह बरसना। निश्चल—अचल, स्थिर । निष्कंप—जिसमें कंपन न हो, जो चंचल न हो। आलोकस्नात—प्रकाशपूर्ण । हिम किरीटनी— बर्फ का मुकुट धारण करने वाली। उपेक्षनीय— तिरस्कार करने योग्य, अवहेलना करने योग्य। मथता हुआ—आलोड़ित करता हुआ, दलन करता हुआ।

पृष्ठ ७१-७२—सभी महान् प्रतिभाशाली साहित्यकारों के······इसके अपवाद नहीं थे—प्राय: महान विलक्षण बौद्धिक शक्ति वाले साहित्यकारों का जीवन संघर्षपूर्ण होता है। उन्हें कितनी ही विषमताओं का सामना करना पड़ता है परन्तु ऐसे संघर्ष कठिन से कठिन क्यों न हो उनके जीवन को विचलित नहीं कर सकते उनके जीवन की शक्ति कभी कमजोर नहीं होने पाती, वे अदम्य बल से ऐसे संघर्षों का सामना करते हैं। बड़े से बड़े संघर्ष भी उनके लिए छोटी सी बाधा के सदृश ही होता जिसे वे सदैव अवहेलना की दृष्टि से ही देखते है, वे सदैव इनका तिरस्कार कर आगे बढ़ते जाते हैं। प्रसाद जी इसका प्रतिवाद नहीं थे। क्षीण—कमजोर, क्षतिग्रस्त। अपवाद—सामान्य नियम को बाधित या मर्यादित करने वाला विशेष नियम, खंडन, प्रतिवाद। अजस्त्र—अविच्छिन्न, अनवरत, सतत। घटाघोप—कोई ढक लेने वाली वस्तु, आडम्बर। दर्शनार्थ—दर्शनों के लिए। वेटिंग रूम —प्रतिक्षा करके का स्थान।

पृष्ठ ७३-७४—अकारण—बिना किसी कारण के। परास्त—जिसका प्रभाव नष्ट हो गया हो, हराया हुआ। शिष्टाचार के नाते—

सभ्यता के लिए। स्थविर—दृढ़, अचल, स्थिर। दुर्बल— कमजोर। स्थूल—मोटा, घना, बली। प्रशस्त—स्तुत्य, प्रशंसा के योग्य, श्रेष्ठ उत्तम, विस्तृत। विषाद की मुद्रा—उदासी का भाव। निश्च्छल—छल रहित।

पृष्ठ ७५-७६—दीवाल—दीवार। बहुश्रुत—जिसने बहुत से शास्त्र गुरू से पढ़े हों, विद्वान जिसने अनेक शास्त्रों की बातें सुनी हों, बहुज्ञ। सुयोग—सुअवसर। क्षय—यक्ष्मा रोग।

पृष्ठ ७७—महाप्रयाण—मृत्यु। क्षुद्र—तुच्छ, छोटा, नन्हा। कनिष्ठ—छोटा, लघु। कलह—झगड़ा, लड़ाई। कटुता—कड़ुवापना। किशोरावस्था—११ से १५ वर्ष तक की अवस्था का लड़का।

पृष्ठ ७८—तरुणाई—युवावस्था, १६ वर्ष से ऊपर की अवस्था वाला। वियोग व्यथा—विछोह की वेदना। उपलब्धि—प्राप्ति। अन्तः सलिला—जिसकी धारा भीतर ही भीतर बहती हो। क्षार—राख। रिजर्व—निश्चित किया हुआ, अन्त में प्रयोग के लिए सुरक्षित। गोपनशील—छिपाव करने वाला। रिसना—नन्हे-नन्हे छेदो से तरल द्रव्य निकलना।

पृष्ठ ७९—क्षय कोई आक्समिक······जा सकता है—क्षय कोई इस प्रकार का रोग नहीं है जो अनायास ही मनुष्य को ग्रस ले। मनुष्य का स्वास्थ्य यदि लम्बे समय तक हीन होता रहे तो उस का अन्तिम परिणाम क्षय रोग ही कहा जा सकता है। रोग का निदान—रोग का कारण, रोग की पहचान। विकल्प—विभिन्नता उपाय। विपन्नता—नष्ट होना, संकट ग्रस्त। पुनरावृत्ति—किसी काम की पुनः आवृत्ति, दोहराने की क्रिया। अदम्य—जो दबाया न जा सके, उत्कट। पग-चाप—पाँव की आवाज। विचलित नहीं हुए—व्याकुल नहीं हुए।

पृष्ठ ८०— असम—विषम, असदृश। निर्विवाद—विवाद रहित, जिसके विषय में कोई विवाद न हो, बिना झगड़े का। दुराग्रह—हठ, अनुचित रीति से किसी बात पर अड़ जाना। सम्पन्न, मधुर भाषी और हसमुख…… ……कठिन हो जाता है—किसी धनी अथवा उन्नति शील, मधुर भाषी तथा विनोदी व्यक्ति के साथ सुख में बैठकर हँस लेना सबके लिए सरल हो सकताहै। तब तो उसके पास मित्रों का तांता सा ही लगा रहता है परन्तु किसी छूत के रोग से ग्रसित उस मित्र की द्युतहीन आँखों में मृत्यु के सन्देश के अक्षरों को पढ़ कर भी उनमें कोई उसे बचाने के लिए प्रस्तुत नहीं होता। मृत्यु की छाया उसके ऊपर पड़ी हुई देखकर भी कोई उसे हटाने के लिए बाजी लगाने को तैयार नहीं होता, उसके पास तक नहीं आता। मनस्वी—ऊँचे मन वाला,बुद्धिमान, दृढ़ निश्चय।

पृष्ठ ८१–८२— प्रतिभा—बिलक्षण बौद्धिक शक्ति, प्रभा। संग्राम—संघर्ष। प्रसार—विस्तार। संचयन—एकत्र करने की क्रिया। धूमिल—धुएं के रंग का, मटमैला। सापेक्ष—जिसे किसी की अपेक्षा हो, एक दूसरे पर अवलम्बित। अतल—तलहीन, अथाह, अछोर, जिसका कोई किनारा न हो। संश्लिष्ट—आलिंगित, मिला हुआ, मिश्रित। भाव और उसकी स्वाभाविक गति……………गति का स्वाभाविक परिणाम है—भाव और उसकी स्वाभाविक गति से बनने वाला जीवन दर्शन दोनों एक दूसरे पर अवलम्बित हैं। बहती हुई नदी के जल को ऊपर से देखने पर आरम्भ से अन्त तक कही तरग युक्त दिखाई देता है और कहीं शान्त तथा ठहरा हुआ। परन्तु उस जल का बहाव आधार-हीन नहीं है, वास्तव में उस अथाह और छोर हीन जल के नीचे खंड न हो सकने वाली भूमि की सत्ता है। इसीलिए आकाश से जो वर्षा का जल बरस कर भूमि पर उतरता है उसे किसी तट की सीमा में बाँध लेना सम्भव नहीं, परन्तु नदी की स्वाभाविक गति के फलस्वरूप

उसे तटों में बाँधा जा सका है। श्रेय—शुभ, मंगल, उपयुक्त, श्रेष्ठ। प्रेय—प्रियतर, अधिक प्रिय। संदिग्ध—सन्देह पूर्ण। प्लावित—जिस पर पानी चढ़ आया हो, जो जल में डूब गया हो।

पृष्ठ ८३–८४—सामञ्जस्य—समन्वय। चरम सिद्धि—अन्तिमसिद्धि अनुगुंजित—समान रूप से गुन-गुनाना। प्रमाणित करटे रहेंगे—सिद्ध करते रहेंगे। सधे हुए—अनुकूल, सिद्ध। नीरव उमड़-घुमड़ रहे थे—मौन भाव से हिलोरें ले रहे थे। हिमाद्रि-तुङ्ग-शृंग—हिमालय के उन्नत शिखर से। स्वर साधक—स्वर की साधना करने वाला।



पांच

पृष्ठ ८५-८६—आलोक प्रहर—प्रकाशमय प्रहर। पक्षी शावक—पक्षी का बच्चा। नीड़—घोंसला। तन्मयता—दत्तचित्त, तल्लीन। तुकबन्दी—तुक मिलाने की क्रिया साधारण पद्य रचना। सम्भवत:—सम्भव है, हो सकता है। सम्बद्ध—मेल, नाता, रिश्ता, साथ। सात्विक—यथार्थ, सत्य, सत्वगुण युक्त, प्राकृतिक। समभाव—बराबर भाव, एक ही जैसा भाव। अयाचित—अप्रार्थित, न माँगा हुआ। छात्रवृत्ति—विद्यार्थी को विद्याभ्यास में सहायतार्थ मिलने वाला धन। विराग—अरुचि, विरक्ति।

पृष्ठ ८७-८८—अनुराग—रुचि, आकर्षण। छात्रावास—किसी स्कूल, कालेज के अन्तर्गत विद्यार्थियों के रहने का स्थान। तत्वावधान—देख रेख। पदक—कोई बहुत अच्छा काम करने पर किसी को उपहार रूप में दिया जाने वाला सोने-चाँदी आदि सिक्के जैसे गोल या अन्य आकार का टुकड़ा जिस पर प्राय: देने वाले का नाम अंकित रहता है। आहूत—बुलाया हुआ, निमन्त्रित। समासीन—सम्यक प्रकार से बैठा हुआ। कृशांगी—दुबली, पतली स्त्री। आविर्भूत—प्रकटित, अभिव्यक्त। आकण्ठ-अवगुण्ठित—गले तक ढकी हुई। पीताभ—पीले रंग का। गेहुँआ—गेहूँ के रंग का, गन्दुमी। विस्मित—आश्चर्य चकित। प्रतिष्ठित हो गई—पदाभिषिक्त हो गई, स्थापित हो गई। क्षीण तरल जल रेखा—कमजोर चपल और अस्थिर जल की बून्द। कठोर पाषाण खण्ड—सख्त पत्थर का टुकड़ा।

पृष्ठ ८९—शिष्टचार—विनम्रता, सदाचार। हिमशिखरों—बर्फ की चोटियाँ। चिर सजग प्रहरी—सदैव जागरूक पहरेदार। सभीत—भय युक्त। गहरा गर्त—गहरा गढ़ा। उच्छ्रृंखल गर्जन भरे निर्झर—स्वेच्छाचारी गर्जन करते हुए निर्झर। गगन-चुम्बी—आकाश को छूने वाली ऊँचाई। हिमदुकूलिनी—बर्फ का बारीक कपड़ा पहने हुए। मरकत—पन्ना। जन्मदात्री-जन्म देने वाली, माँ।

पृष्ठ ९०— मातृहीन—बिना माँ का। तुमुल — क्षुब्ध, कई तरह की ध्वनियों के मेल से उत्पन्न ध्वनि। उपत्यका—पहाड़ के पास की जमीन, तराई। विराट—विशालता। प्राचीर—चहार दिवारी।

मुखरता—ध्वनित, शब्दायमान। मुखर—वाचाल। पर्वत के एकान्त की कल्पना ...... और कभी टूट कर कहीं बिखर जाते हैं—पर्वत के आस-पास का वातावरण कितना शान्त होता है-यह कल्पना कर लेना तो सरल हैं, परन्तु यह एकान्त भी कितना वाचाल हो सकता है-इसका अनुमान तभी लगाया जा सकता है जबकि वहाँ जाकर निवास किया जाए और इसके साथ ही यदि व्यक्ति के मनका क्षुब्ध कोलाहल कुछ देर के लिए शान्त हो सके तो वह एकान्त शब्दों के बिना ही ध्वनित होकर, मौन भाषा में ही जीवन के गूढ़ से गूढ़ रहस्य भी समझा देता है। हिमालय के आस-पास की जमीन में जहाँ तहाँ घोंसले जैसे घर बना कर उनमें बसा हुआ मानव प्रकृति की विशालता के सम्मुख छोटा लगने लगता है। और वहाँ किसी शहर के समान ही एक स्थान पर व्यक्ति-समूह भी उपलब्ध हो सकते, जो व्यक्ति हैं भी वे अपने-आप में व्यस्त हैं, स्वयं ही में खोए हुए हैं। यहाँ तक कि बाहर से आने वाले झोंके तक भी इन ऊँची नीची दीवारों से टकराते हुए कभी किसी कोने में जा गिरते हैं, कभी टूट कर कहीं बिखर जाते हैं।

पृष्ठ ९१— दुकेला—जिसके साथ कोई और भी हो। लास—उछल-कूद, रास, नृत्य। रजत राशि—चाँदी का कोष। जूझना—लड़ना, संघर्ष करना। दीप्तिमय—आभामय।

पृष्ठ ९२— किशलयों—कोपलों, नवपल्लवों। रुक्षता—रूखापन, रुखाई। श्रुति-मधुर—जो सुनने में मधुर लगे। सृजनशीलता—निर्माण करने की क्षमता। अव्यक्त—जो व्यक्त नहीं है।

पृष्ठ ९३— आहत—घायल, हत, जिस पर प्रहार किया गया हो, रौंदाहुआ। वीतराग—वासनारहित, इच्छाहीन। तटस्थता—उदासीनता, जो मतलब न रखता हो। घरौंदे—घर, घोंसला। अनुसन्धान—खोज। लम्बी अलकों को—लम्बे लम्बे सिर के बालों को। क्षितिज—दृष्टि-सीमा। सद्यः—तत्क्षण, कुछ ही काल पूर्व।

पृष्ठ ९४-९५— शर-सन्धान, — बाण का निशाना लगाना। विनोदी—हँसमुख। लांछन—दाग, दोष, कलंक। परिग्रह—किसी स्त्री को भार्या के रूप में स्वीकार करना, पत्नी, घर, परिवार। झंझा—आँधी। पछाड़—शोक से मूर्छित होकर पीठ के बल गिर पड़ना, परास्त करना। धरासात्—धरती पर गिराना। अभिनन्दन—स्वागत।

—:o:—

छः

पृष्ठ ९७-९८— नाटा—छोटे कद का। कृशी—पतली। विरोधाभास—दो वस्तुओं में विरोध का आभास होना। वजन—तोल, भारी। क्षीण—कमजोर। दुर्लभ—कठिन। आविर्भूत—प्रकटित, अभिव्यक्त। साहित्य का स्रष्टा—साहित्य का सृजन करने वाला। विवेक—यथार्थ ज्ञान, विचार। कुशाग्र बुद्धि वाला—तीक्ष्ण बुद्धि वाला।

पृष्ठ ९८— किशोर—११ से १६ वर्ष तक की अवस्था वाला लड़का। तरुणाई—युवावस्था। वियोग व्यथा—बिछोह की वेदना। स्पृहनीय—अभिलषणीय, जिसके लिए स्पृहा की जाय। विलाप-कलाप—रोने अथवा शोक करने का राग। पलायमान—भागती हुई। संयम—नियन्त्रण। मर्यादा—सदाचार, सीमा। बड़ों का, संयम की सब रेखाएं .... पलायमाना दिखाई पड़ती—बड़े यदि रोने धोने में नियन्त्रण की सब सीमाएं भी पार कर जाय तो सीमा-भंग नहीं कहा जाता, उससे तो यही अनुमान लगाया जाता है कि अवश्य ही वेदना की तीव्रता है, इसीलिए इस प्रकार विलाप किया जा रहा है परन्तु उनके सामने छोटों का रोना-गाना सदाचार के विरुद्ध माना जाता है। सीता का हरण हो जाने पर मर्यादा का पालन करने वाले राम उसके वियोग-विरह में लक्ष्मण से ही नहीं हर लता, वृक्ष, पशु पक्षी से अपनी वेदना सुनाते चलते हैं, सबसे सीता का पता पूछते हैं। परन्तु यदि इसी प्रकार लक्ष्मण भी अपने बड़े भाई के सामने एक-एक वृक्ष के नीचे बैठ कर अपनी पत्नी उर्मिला के वियोग में आंसू बहाते तो प्रत्येक कवि की प्रतिभा भागती हुई दिखाई देती। क्योंकि इस प्रकार अपने अग्रज के समक्ष उनका विलाप-कलाप मर्यादा-भंग ही माना जाता।

पृष्ठ ९९-१००— सोपान—निःश्रेणी, सीढ़ी। अनुजता—छोटा

भाई। रंचमात्र—थोड़ा भी, किंचित्। वयस्—अवस्था, आयु। मंगल-कंकण—शुभ विवाह सूत्र, विवाह से पूर्व वर-कन्या के हाथ में बांधा जाने वाला धागा। अनाद्यन्त वह प्रेम..........चिरकालीन असमाप्त—ऐसा प्रेम तुझे कहाँ से प्राप्त हुआ था जिसका कोई आदि अन्त ही नहीं है। तेरा तो अब कुछ पता नहीं, परन्तु वह प्रेम तो सदैव रहने वाला है, वह कभी समाप्त नहीं होने वाला। प्रवाह—बहाव। प्रगाढ़—दृढ़, गहरा। पुंजीभूत—एकत्रित। अविच्छिन्न—अभिन्न। विजातीय—अन्य जाति के। आहत—हत, घायल।

पृष्ठ १०१–१०२— निजत्व—अपनापन। लवण-खण्ड—नमक का भाग। चक्रव्यूह—चक्र के आकार का समूह। दाय भाग—पैतृक या सम्बन्धी की सम्पति का उत्तराधिकारियों में विभाजन। आयतन—स्थान, घर, आश्रय।

पृष्ठ १०३— सम्पूर्ण निष्ठा के साथ—पूर्ण विश्वास के साथ। अन्तराल—मध्यवर्ती स्थान या काल। अनुकरण—नकल। अपराजेय—जिसे जीता न जा सके। अनगढ़—बिना गढा हुआ, बेडौल, टेढ़ा-मेढ़ा। चितेरा—चित्रकार। स्पन्दित—गतिशील। अटूट—न टूटने वाला। सकुल—घना, भरा हुआ। निर्विवाद—विवादशील। गन्तव्य—जानने योग्य, गम्य। पंचांग—पांच अंगो वाला। ऊर्ध्वगामी—ऊपर की ओर जाने वाला।

